एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा

सिद्धेश्वर

डा० मोहन सिंह

एक स्वप्न द्रष्टा की अंतर्कथा

• सिद्धेश्वर

ISBN 81-904100-2-4

लेखकों के उद्‌गार से

इस जीवनी का प्रणयन कर जीवंत जीवनीकार सिद्धेश्वर ने सुफी साधक डॉ० मोहन सिंह जी के अपरिमेय व्यक्तित्व की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है । यही नहीं, उन्होंने डॉ० साहब को एक कुशल पैथोलॉजिस्ट के साथ-साथ एक समर्पित समाज-सेवी के रूप में याद किया है । राष्ट्र के प्रति उनकी अटूट कर्त्तव्यनिष्ठा तथा स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान गाँधीजी द्वारा स्थापित आदर्शों, मूल्यों एवं सिद्धांतों का अक्षरसः पालन करने की उनकी भूमिका को बड़ी मुखरता के साथ प्रस्तुत करने में लेखक ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । एक सच्चे रसज्ञ कलाकार की तरह हर शीर्षक में विस्तार के साथ डॉ० साहब के जीवन-दर्शन, विचार और सिद्धांत की व्याख्या कर जीवनीकार ने उनका मूल्यांकन किया है ।

–डॉ० देवेन्द्र आर्य की भूमिका से ।

स्वतंत्रता-सेनानी रह चुके बिहार के तत्कालीन बैक्टेरियोलॉजिस्ट डॉ० मोहन सिंह जी का जीवन सफलता, सिद्धि और प्रसिद्धि की एक ऐसी कमनीय कहानी है जिसके नायक वे स्वयं थे और निर्माता भी । उनके विराट व्यक्तित्व को शब्दों के ससीम घेरे में आबद्ध करना आसान काम नहीं, क्योंकि शब्द ससीम है और उनका व्यक्तित्व असीम । ऐसे असीम व्यक्तित्व को ससीम शब्दों में आबद्ध करने का जटिल काम 'विचार दृष्टि' के यशस्वी संपादक सिद्धेश्वर जैसे सिद्ध व्यक्ति ही कर सकते थे । डॉ० मोहन सिंह जी के ओजस्वी और तेजस्वी जीवन को इन्होंने जिस प्रकार अपनी धारदार कलम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है, वह अनुपम है, अनोखा है ।

-प्रो० रामबुझावन सिंह की शुभाशंसा से ।

सिद्धेश्वर जी की यह पुस्तक डॉ० मोहन सिंह जी के संपूर्ण जीवन की गाथा का कौशल ही नहीं है, बल्कि आज के मध्यवर्गीय परिवार और तत्संबंधी समाज का एक खोजपूर्ण दस्तावेज भी है । समकालीन जीवन और समाज में घटनाओं के पीछे किस किस्म की मूल्यहीनता है, मुखौटे हैं और सार्वजनिक जीवन में किस तरह के 'खोटे सिक्के' का चलन है, इसके विवरण भी यह कृति जुटाती है ।

-श्री जियालाल आर्य के अभिमत से ।

समाज के प्रति अपनी जवाबदेही के निर्वहन के लिए डॉ० मोहन सिंह की जीवनी जीवनीकार सिद्धेश्वर ने इस ढंग से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है कि यह सरस और पठनीय बन पड़ा है । अत्यंत सीधे और सरल ढंग से प्रस्तुत इस जीवनी में डॉ० साहब की विचारधाराओं को बड़े जतन से समावेश किया है ।

–प्रो० साधुशरण के अभिमत से ।

एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा

सिद्धेश्वर

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा

लेखक : **सिद्धेश्वर**
संपादक, 'विचार दृष्टि'
'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001
दूरभाष: 0612-2228519

प्रकाशक : सुधीर रंजन,
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन,
'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-110 092.
दूरभाष : 011-22059410, 22530652
मोबाइल : 9811281443, 9811310733

© : लेखक

मुद्रक : **हिमाचल प्रेस**, दरियापुर, पटना-4
फोन : 3250113, 9234220102
9835434094

प्रथम संस्करण : वर्ष 2006 ई.

सद्भावना राशि : सजिल्द 20 रुपए

EK SWAPNDRASHTA KI ANTARKATHA (Living Biography of Dr. Mohan Singh)
By Sidheshwar
Price Rs 20.00

समर्पण

डॉ० मोहन सिंह

राष्ट्र के प्रति समर्पित एक ऐसे स्वप्नद्रष्टा, जिन्होंने अपने जीवन में
त्याग और परिश्रम की भारी पूँजी लगाकर महानता प्राप्त की
और जिनका समाज के सामान्य जन से नाता था,
जिनसे सार्वजनिक जीवन में शुचिता बरतने की
मुझे प्रेरणा मिली और जिनके न रहने से
सामाजिक जीवन में मुझे एक अजीब
तन्हाई का बोध होता है–उनकी पावन स्मृति
को सप्रेम समर्पित।

–सिद्धेश्वर

प्राक्कथन

निजी जीवन हो या इतिहास का मामला, अतीत को न तो पूरी तरह भुलाया जा सकता है और न ही लौटाया जा सकता है। व्यक्तिगत जीवन की तरह इतिहास भी एक स्मृति-मंजूषा है, जिसमें से चुन-चुनकर कुछ -न-कुछ चीजें समय-समय पर निकाली जाती हैं। सब कुछ हासिल करके या सबकुछ खोकर, अंत में किसी भी व्यक्ति के हाथ जो आता है वह रह जाती हैं केवल स्मृतियाँ। दूसरी चीजें उस तरह 'अपनी' नहीं होती। स्मृति ही वह गतिशील सर्जनात्मक तत्त्व है जो काल, इतिहास, साहित्य और समाज के नए परिदृश्य रचती चलती है और यही परिदृश्य हमारी बेचैनी, उत्कंठा का भी परिदृश्य है, सर्जनात्मक कल्पना और हमारी संभाव्य मुक्ति का परिदृश्य है। इसी वजह से अपने अनुभव को स्मृति और स्मृति को संवेदना में बदलने की मैंने भरसक कोशिश की है। कारण कि जीवन, कला अथवा साहित्य की आधार-सामग्री है जिसका सौंदर्य शास्त्रीय प्रयोगशालाओं में लाकर परीक्षण किया जाता रहा है और न जाने कितने दूसरे रसायन मिलाकर परिष्कृत उत्पाद तैयार किया जाता रहा है। जीवन केवल वर्तमान में चरितार्थ नहीं होता, अतीत हमारा जनक होता है। हमारा अतीत यदि कुछ स्वर्णिम है तो उसकी स्मृति भी तो परोक्ष साक्षात्कार है। मेरे जीवन और सामाजिक कार्यक्षेत्र के साथ डॉ. मोहन बाबू की जो स्मृतियाँ जुड़ी हैं, वे मेरी अमूल्य निधि हैं। मैं सदैव उनसे नई प्रेरणा ग्रहण करता हूँ। भाव जगत् या मानसिक जगत् की चीजों को ही अपने भीतर समेटा जा सकता है। डॉ. मोहन बाबू से जुड़ी भाव-जगत् की स्मृतियाँ वैसी ही चीजें हैं, जिन्हें शब्दबद्ध कर इस पुस्तक में समेटने की कोशिश की गई है। स्मृति-संयोजन में इतिहास अथवा अतीत की बड़ी भूमिका होती है। समाज और देश में जब किसी महान व्यक्ति की चर्चा होती है तो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व को अतीत में झाँककर देखना होता है। अतीत की भूमिका यही है कि उस व्यक्ति ने कैसा समाज बनाने की कोशिश की और उसके आदर्श किस हद तक हासिल हो पाये, इससे अवगत कराये। लक्ष्य की प्राप्ति उस व्यक्ति के

प्रयत्न और उसके व्यक्तित्व-कृतित्व के दबावों पर निर्भर है। अगर उनके आदर्श ऊँचे रहें, तो उसके हर आयाम पर विचार करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन एक इतिहास होता है, क्योंकि अपने समय में वह भी तमाम गतिशीलन-परिवर्तन का हिस्सा है। चाहे-अनचाहे वह अपने समय और स्थितियों से प्रभावित ही नहीं होता, बल्कि संचालित भी होता है। इसलिए समाज की आदर्श कल्पना में निश्चय ही उस व्यक्ति की प्रकृति, उसके समरस संबंधों, अद्वैत और अभेद, सहयोग एवं करुणा, प्रेम एवं शांति और अहिंसा के तत्त्वों पर जोर देना जरूरी है। इस पुस्तक में डॉ. मोहन बाबू से जुड़े अतीत को आदर्श मानकर हम उनके व्यक्तित्व-कृतित्व की गहराई से यहाँ विवेचना कर रहे हैं। इतिहास की तरह इसमें भी बहुत कुछ जोड़ने-छोड़ने की कोशिश है और मैंने डॉ० साहब के अनछुए और अनदेखे पहलुओं को जानने और उजागर करने का प्रयास किया है।

यह संस्मरणात्मक ग्रंथ मात्र औपचारिकता वश नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह एक ऐसा सार्थक प्रयास है जिसमें संकलित संस्मरण, लेख और डॉक्टर मोहन बाबू के बाजुओं के घेरे के लोगों सहित उनकी समाज-यात्रा की याद मैंने दिलायी है। डॉ. साहब ने जीवन से मिले हलाहल को आत्मसात कर जो अमृतरूपी चीजें समाज को दी हैं, वह सदा नूतन संजीवनी ही रहेंगी। इनका प्रभाव समाजीकरण (Socialisation) की प्रक्रिया में संस्कृति, इतिहास, भाषा, कला, सभ्यता पर पड़ा है। यही वजह है कि मानव एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में परंपरा से नितांत विछिन्नता कभी नहीं होती और परंपरा के आधार पर ही समाज की प्रगति होती रहती है, क्योंकि लोक-मूल्य, लोक-व्यवहार, लोक-प्रवृति, लोक-अभिरुचि, लोक-जीवन-दर्शन तथा लोकजीवन-पद्धति के कालक्रम में जो आदतें, स्वभाव, रूढ़ियाँ आदि निर्मित होती हैं, उसे ही परंपरा की संज्ञा दी जाती है। ये परंपराएँ फिर सभ्यता, संस्कृति के लक्षण और चरित्र बन जाती हैं और परंपराएँ अपने सहजात अंतर्विरोधों की वजह से काल-प्रवाह में टूटती-बनती-चलती हैं। फिर द्वंद्वात्मक सिद्धांत, व्यतिरेक और समन्वय के अनुसार नए-नए स्वरूप भी ग्रहण करती हैं।

यह कहना समीचीन होगा कि पाटलिपुत्र में लगातार वर्षों तक शिक्षा ग्रहण करने तथा सेवा में रहने के कारण डॉ. मोहन बाबू के व्यक्तित्व को मगध की संस्कृति ने निश्चित रूप से प्रभावित किया है। महावीर और बुद्ध के कार्य क्षेत्र तथा गुरुगोविन्द सिंह के अवतरण की पुण्य धरती मगध की परंपरा ने भी उनके सारस्वत एवं सामाजिक-जीवन को प्रभावित किया है। मगध जनपद की मिट्टी, हवा, पानी, आकाश और अग्नि ने डॉ. साहब के प्रत्येक क्रिया-कलाप, उपलब्धि और समग्र विकास-बोध की प्रगति को शिल्पित किया है। शाहाबाद की पावन धरती में जन्मे और मगध की माटी में पल्लवित-पुष्पित डॉ. मोहन बाबू ने अन्य हस्तियों की तरह स्वाधीन भारत के सुनहले, रंगीन सपने मन में संजोए थे। यह पुस्तक राष्ट्र के प्रति समर्पित एक ऐसे ही स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा को रूपायित कर रही है, जिसने आजादी के पूर्व त्याग, तपस्या, आत्मबलिदान के ऐसे अविस्मरणीय उदाहरण देखे थे, जो आज की पीढ़ी के लिए कल्पनालोक की वस्तु जैसे है। इस अवतरण में डॉ. मोहन बाबू से संबंधित अपने संपूर्ण लेखन के जरिए उनकी मार्मिक वेदना को अभिव्यक्त करने के लिए मैं विवश हुआ हूँ। इसलिए मेरे लेखन में कहीं भी बनावट या रस्म अदायगी नहीं है। डॉ. साहब स्वयं भी न केवल भारतीय परंपरा के रीति-रिवाजों से जुड़े थे, बल्कि नैतिक परंपरा की उपादेयता, प्रासंगिकता और सार्थकता में उनकी गहरी आस्था रही। इतना ही नहीं, उन्हें तो समाज के सामान्य जन-जीवन से भी नाता था। यही कारण है कि जीवनपर्यंत अध्यापन कार्य में निरत रहते हुए भी उनकी संवेदनशीलता कुंठित नहीं हुई और न प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए जीवन के मूल्यों को ही उन्होंने तिलांजलि दी। फिर भी एक चिकित्सा-शिक्षा के प्राध्यापक के रूप में जो प्रतिष्ठा और यश उन्हें मिला, वह विरलों को मिलता है। ये विशेषताएँ और विविधताएँ इस पुस्तक में देखने को मिलेंगी। उलझनों और नैतिक पतन के झंझावात से उबरने के लिए यह पुस्तक एक सही गाइड का काम करेगी। जो नैतिक आक्रोश और नैतिक संकल्प आज आवश्यक है, मैंने उसी नैतिक वृत्त में सारे गुणात्मक तत्त्वों को समाविष्ट किया है। अपने-आप में यह पर्याप्त है या नहीं, यह बहस का मुद्दा है। यों तो अतीत के आदर्शों पर वर्तमान पग-पग पर मुँह चिढ़ाता है, मगर

वर्तमान का शंकास्पद होना स्वाभाविक है।

यह बात ठीक है कि अतीत में वापस नहीं लौटा जा सकता, लेकिन झाँका तो जा सकता है खासकर झरोखे से झाँकती अतीत की गाथा को पुनः सुनाया जा सकता है। यह पुस्तक अपने सही और स्वस्थरूप में पाठकों को अतीत में झाँकने का अवसर देती है वरना विस्मरण हावी रहता है, जो कि बुद्धि का नाश करता है और अंतःकरण को धूमिल करता है। यदि व्यक्ति को उसकी संपूर्णता में देखा जाए, उसके सत-असत्, भले-बुरे पहलुओं को ध्यान में रखा जाए, तो यह मुमकिन होना चाहिए। सोचने-समझने का व्रत लेकर चलनेवाले ख्यातिलब्ध चिकित्सक और समाज-सेवी डॉ. मोहन बाबू को जब हम संपूर्णता में देखते हैं, तो पाते हैं कि आज हिंसा, स्वार्थ, लोभ, कामलिप्सा में लिप्त मनुष्यों के बीच डॉ. साहब कहीं-न-कहीं परमार्थ, करुणा, सौंदर्य, प्रेम, त्याग और बलिदान में भी स्वतः समर्थ रहे। यथार्थ का यह आदर्श पक्ष और आदर्श का यह यथार्थ पक्ष है। बाकी उड़ान सबकी अपनी-अपनी होती है। इस पुस्तक में मेरा प्रयास रहा है कल्पित आदर्श और भयावह यथार्थ के बीच अंतराल को पाटना जिसके लिए मैंने डॉ. मोहन बाबू के आदर्शों का सहारा लिया है, जो यथार्थ के भरसक करीब था। पुरातन की गुहार में कितना कुछ प्रामाणिक आत्मालोचन तथा डॉ. साहब के व्यक्तित्व का कितना खुला और बारीक विश्लेषण हो पाया है, साथ ही भविष्य-दृष्टि में यह कितना हितकर होगा, यह तो, पाठक ही बता पाएँगे या फिर आलोचक, जिनके हाथ में यह पुस्तक है, पर इतना अवश्य है कि इस पुस्तक में जो विश्लेषण पेश किए गए हैं, वे संश्लिष्ट, भावपूर्ण और विचारपूर्ण हैं। इस लिहाज से इसकी संश्लिष्टता ही यह माँग करती है कि उनके अतीत का वर्तमान के झरोखे से बारीक तौर पर देखा-परखा जाए। वैसे भी किसी व्यक्ति के केवल दोष के आधार पर ही उसके संपूर्ण व्यक्तित्व की व्याख्या नहीं की जा सकती, उसके गुणों एवं आदर्शों को भी परखना होगा। और दूसरी बात यह कि किसी भी व्यक्ति का मूल्याँकन उसके जीवन के किसी एक हिस्से के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसीलिये डॉ. साहब का मूल्याँकन मैंने उनके समग्र जीवन के आधार पर करने का प्रयास किया है।

डॉ. मोहन बाबू अकस्मात हमलोगों के बीच से नहीं उठ गए, बल्कि एक लंबी रूग्नता का दंश झेलते हुए विदा हुए। अब तो उनके गुजरे लगभग एक साल से अधिक हो गए। अपनी वार्धक्य उम्र और बीमारी के चलते वह धीरे-धीरे शिथिल पड़ते गए। स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। फिर भी आँखों में जिजीविषा की चमक थी। दिन-व-दिन गिरते स्वास्थ्य के कारण आखिर पिछले साल यानी सन् 2004 की 15 मई को उनकी लौकिक जीवन-यात्रा का अंत हो गया। पर हमारे जैसे अनेकों सामाजिक जनों के जिम्में वे समाज की जबावदेही छोड़ गए, क्योंकि उनके हृदय के कोमल संस्कार उनके सान्निध्य से हममें भी समाहित हो चुके थे। उनका उन्मुक्त भाव से मिलना, रसात्मक बातों से घेर लेना, मीठी वाणी और हाव-भाव से स्नेह टपकना आज भी सब कुछ मेरे स्मृति-पटल पर एक-एक कर उभर रहे हैं। मैंने सोंचा अपने आद्यपुरुष की जीवन गति से पीढ़ी अपरिचित रहे- यह कसकवाली बात थी। बस क्या था, मेरे मन की वही सोंच और ममता वजह बनी एवं कतरे-कतरे जुड़ एक कृति बन गई- 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा'। मेरे साहित्यकार मन और मोहन बाबू के प्रति आस्था ने अक्षर उकेर दिए- यही मेरी लेखनी की सफलता है। उन सभी स्मृतियों को शब्दों में बाँधना तो संभव नहीं, पर हमारी कोशिश है कि समाज से जुड़े कुछ प्रसंगों एवं समाज के प्रति उनके श्रद्धा-भाव को मैं अपने शब्दों में अभिव्यक्त कर सकूँ। कमजोर कंधों पर यादों का वजन ढोना आसान नहीं होता है। शब्द बाँधने की प्रक्रिया कुछ भूली-बिसरी क्षणिकाओं को कुरेदकर बिछोह के जख्म को हरा करती है।

एक ओर जहाँ डॉ. साहब का अपने समकालीनों के प्रति स्नेह-भाव था, तो वहीं दूसरी ओर हमारे जैसे अनुज और कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ताओं को वे गौरव और सम्मान भी देते थे। वैयक्तिक-संवेदना से परिपूर्ण डॉ. साहब में हृदय-ग्राह्य सरसता की गौरवास्पद संभावनाओं की झाँकी देखने को मिलती थी। उनकी भावुक वाणी अनायास हृदय को उल्लास से भर देती थी। ऐसे वक्त कवि रामनरेश पाठक के 'अनामा' के गीतों की कुछ पंक्तियाँ मुझे स्मरण हो आती हैं-

बेधती है मर्म अब तो याद पल-पल,

क्या हुआ, प्यासा रहा संपूर्ण जीवन।
हूँ संजोए भाव और अभाव का धन!
अमिय होकर प्राण होता बहुत पागल।

इसी प्रकार कुछ और पंक्तियों को देखें-

पतले अधरों पर छलकी मदिरा की सुधि फिर आती है
बहुत दिनों की भूली-भूली प्यास उभर उग आती है।

डॉ. साहब नहीं रहे,पर उनकी स्मृति हृदय को द्रवित कर देती है। तीस वर्षों से अधिक का संपर्क, घंटों मिल-बैठकर समाज व देश की समस्याओं पर बातचीत का प्रसंग, एक-एक कर सब याद आते हैं। संयोग ही कुछ ऐसा रहा कि हम दोनों के कार्य प्रायः सामाजिकता से संबंधित रहे। सामाजिक कार्यों को लेकर ही हम दोनों के बीच घनिष्टता और संबंधों में प्रगाढ़ता उसी दौरान बढ़ती गई। डॉ. कृष्ण देव प्रसाद, प्रो. रामप्रवेश सिंह, श्री श्रीभगवान सिंह, श्री मनेजर प्र. सिंह, श्री ब्रह्मदेव पटेल, उ.प्र. के पटेल जे.पी. कनौजिया, श्री रामानन्द सिंह, श्री परमानन्द सिंह, ई. शिवमंगल प्रसाद सिंह, ई. बी.पी. सिंहा, श्री भोला मांडर, आदि सामाजिक विचारधारियों के साथ वे कदम-से-कदम मिलाकर चला करते थे। हमसभी ने समाज व राष्ट्र निर्माण का सपना संजोया था। मेरे और डॉक्टर साहब के बीच उम्र का फासला लगभग बीस साल का था। इसका लाभ उठाते हुए हम उन्हें अग्रज मानकर व्यवहार करते थे। इस दो दशक की दूरी का अहसास तो हमें तब हुआ, जब वे हमसे इतनी दूर चले गए, जहाँ से आज तक कोई वापिस नहीं लौटा है। 'सामाजिक-यात्रा' में हम दोनों का गहरा भावनात्मक संबंध रहा। एक दूसरे के करीब आने का, बेहतर ढंग से उन्हें समझने का मौका तो हमें तब मिला जब हम पटेल सेवा संघ से जुड़े और वे सरदार पटेल छात्रावास के प्रतिष्ठित संस्थापक के रूप में उभर रहे थे। फिर तो शायद ही कोई दिन ऐसा गुजरता, जब हम-दोनों एक-दो पल के लिए रू-ब-रू नहीं होते। डॉ. साहब अपने पैथोलॉजिकल जाँच से तो अवश्य बँधे रहते थे, किंतु उसमें बँधकर रहना उन्हें पसंद नहीं था। यही कारण था कि उनकी साँस का पक्षी भी काया के पिंजरें की गिरफ़्त में नहीं रह सका। अक्सर मधुगंध सिक्त हरितलता-बल्लरियों से उलझे हुए भी उनका मन-पक्षी उन्मुक्त उड़ान भरता

हुआ सदा जन साधारण के सामाजिक जीवन से, विद्यार्थियों की समस्याओं से संश्लिष्ट रहा। समाज-साधना उनके जीवन का अहम हिस्सा रही है। उनका मानना था कि 'समाज उनके लिए मनुष्य होने और बने रहने के लिए एक अनिवार्य शर्त है, कदाचित चेतना शून्य पत्थर, न होकर रह जाऊँ, इसलिए समाज-सेवा मेरे लिए बुनियादी जरूरत है। जीवन को बल, संबल प्रदान करने के लिए, संजीवित रखने के लिए अनिवार्य तत्त्व के रूप में और चैतन्य ऊर्जा के रूप में समाज ने मुझे प्रभावित किया।'

डॉ. साहब समाज के उस काल-खंड में जी रहे थे, जबकि सारा आकाश सशक्त समाजसेवियों से आच्छादित था। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता के सौष्ठव की छवि उस तारा-मंडल में कभी भी धुँधली होनेवाली नहीं है, बल्कि उसका स्वरूप निखरता ही जाएगा जो वर्तमान व आनेवाली पीढ़ी के लिए प्रकाश-स्तंभ के रूप में पाथेय का काम करेगा। आज भी वे बसते हैं हमारे चित्त में, समाज में, हवा में और आकाश में चमकते नक्षत्रों की तरह उज्ज्वल। मधुर संवेदनाओं के समाज-सेवी, जीवन की सच्चाईयों और गहराईयों के ज्योतिर्मय चिकित्सक डॉ. मोहन बाबू के संपूर्ण वृत को उजागर करना कठिन है, किंतु दु:साध्य नहीं। आखिर तभी तो कलम उठाई है मैंने उनके जीवन के विभिन्न आयामों को इस पुस्तक में संजोने के लिए । भ्रले ही डॉ. साहब हमें छोड़कर चले गए, उनके दैहिक जीवन को विराम लग गया और वे अपनी सारी इच्छा, सारे मिलन, सारी यादों का घर अपने साथ लेकर चले गए, किंतु हमारे पास उनकी यादें तो मुखरित होगीं ही ो समाज व साहित्य का एक अंग बनेगी। उनसे जुड़ी स्मृतियाँ समाज व साहित्य वाटिका का रसाल सिद्ध होंगी। आज भी उनका प्रसन्नचित रूप, मुस्कुराता चेहरा, मीठी आवाज और आत्मीय भाव हमारे स्मृति-पटल पर उभर आते हैं और उनके मधुर शब्द कानों में गूँज जाते हैं-

दिल में याद, आँखों में सूरत, कानों में उनकी सदा
फिर भी एक महसूस होती है कमी उनके बगैर।

उनकी याद आते ही मन बोझिल, हृद्य विह्वल और नेत्र सजल हो आते हैं। आखिर तभी तो राज्य तथा भारतीय स्तर के समाज-सेवी तो अनेक हो

गए, परंतु जो श्रद्धा व सम्मान, प्यार और प्रतिष्ठा डॉ. साहब को उनके जीवन काल में मिली वह अन्य को सुलभ नहीं हो सकी।

पाटलीपुत्र के सामाजिक और सांस्कृतिक माहौल में वे इतने रच-बस गए थे कि यहाँ के अतिरिक्त अन्यत्र न तो उन्हें चैन मिल सकता था और न उनके बिना पटनावालों को संतुष्टि। इतिहास के पन्नों में रेखांकित होगा कदाचित ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व-

हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

जिसकी धमनियों में समाज-सेवा का लहू बह रहा था, उनकी स्मृति को ताजा रखने के लिए ही यह पुस्तक है। जो तत्कालीन सभ्य समाज का गौरव रहा और जिसने पुरानी और उच्च परंपरा का निर्वाह किया और जो समाज व राष्ट्र की सेवा बदस्तूर करता रहा, उसकी लंबी सेवा के सम्मान के लिए इस पुस्तक का प्रकाशन समीचीन है। एक समाज-सेवी होने के नाते सरदार पटेल छात्रावास के भवन-निर्माण के वक्त इनके समक्ष बहुत सारी कठिनाईयाँ आती रहीं, लेकिन इनके कदम कभी नहीं डगमगाए। वह उस कमल के स्वरूप थे, जिसकी जड़ तो मिट्टी और कीचड़ में हुआ करती है, पर फूल पानी की सतह पर अपनी सुरभि और सौंदर्य से दर्शकों को आकर्षित करता रहता है। डॉ. साहब अपने-आपमें पाटलीपुत्र के एक जीते-जागते इतिहास रहे और इस इतिहास पुरुष की कृतियों को हम न भूल जाएँ, इसी ख्याल से यह पुस्तक लिखी गई है। मुट्ठी में आकाश समेटना, कितना कठिन है। शब्दों के माध्यम से पूरे व्यक्तित्व को रूपायित करना, असाध्य कार्य है फिर भी मैंने प्रयास किया है। मैंने संवेदनशील अभिव्यक्ति को सार्थक शब्द देने की चेष्टा की है। डॉ. साहब की तमाम भावनाएँ, संघर्षों, अपेक्षाओं और विरोधाभासों को चित्रित करने और उनकी जिंदगी को समझने का प्रयास किया गया है।

यह बात ठीक है कि मेरे एक सहृदय मार्गदर्शक डॉ. मोहन बाबू स्वर्गीय होकर अपने जीवित हमराही को खंडहर बना गए और टूटी संवेदनाओं की अनुगूंजित स्मृतियाँ तथा आँसुओं की अविराम श्रृंखला रुकने

का नाम नहीं ले पा रही है, पर भरे-पूरे उनके देदीप्त चेहरे की सहज मुस्कान की एक बंकिम रेखा और उनकी आत्मीयता आज भी मुझमें एक उर्जा प्रदान कर रही है जिसके प्रवाह में किसी को भी अपने में समेट लेने की क्षमता को बचाए हुए मैं समाज के समक्ष खड़ा हूँ और समाज में जकड़न व टूटन की चुनौती के वक्त भी इसकी अस्मिता को बरकरार रखते हुए तिमिर के द्वार पर उजाले का शिल्पी बनने की लालसा लिए जिंदगी के माथे पर आशा और विश्वास के चंदन का तिलक कर रहा हूँ। डॉ. साहब के वक्त समाज का जो नग्न यथार्थ था, उस यथार्थ के बीभत्स का सामना करने का मेरे मन में सुदृढ़ संकल्प है, क्योंकि मैं समाज की गर्हित विभीषिकाओं एवं विषमताओं से पूरी तरह परिचित हूँ। डॉ. साहब की नैतिक भावभूमि की परिधि ने समाज के कठोर यथार्थ को अपने कोमल अंक में समेट लिया था। कदम-कदम पर हमने इस सत्य और अँधेरे की इस चुनौती को साहस से स्वीकार किया है जिसकी प्रेरणा मुझे स्वयं डॉ. मोहन बाबू से मिली है। डॉ. साहब के इसी प्रेरणास्पद व्यक्तित्व को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना इस कृति का अभीष्ट है। इसकी समस्त प्रस्तुति आनंद की साधना है जिसमें हमारे नए भाव संकल्प के रूप में वंशी बने हैं। 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' नामकरण मेरी जिजीविषा का, विश्वास का तथा संकल्पों का स्पष्ट द्योतक है। हमें विश्वास है कि संकट पथ पर साहस कर बढ़ें तो फूल ही नहीं काँटे भी हमसफर होंगे। ऐसे वक्त में हमें याद आती हैं डॉ. देवेन्द्र आर्य की कृति 'मैं उगते सूरज का साथी' के 'चंदन बनूँगा मैं' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ जिसमें कवि ने भी अँधेरे की चुनौती को साहस से स्वीकारा है-

'है चुनौती आज भी स्वीकार मुझको यह
तुम बिछाओ पंथ में काँटे, चलूँगा मैं।'

संपर्क सानिध्य में आये डॉ. मोहन बाबू सरीखे व्यक्तियों के बारे में जिनसे जीवन में अपार स्नेह प्राप्त होता रहा हो, सर्वथा नि:संग भाव से लिखना आसान नहीं होता। फिर भी मैंने इस कठिन कार्य को पूरा करने का प्रयास किया है, क्योंकि भारतीय संस्कृति के प्रतिष्ठित पुरुष डॉ. मोहन सिंह जी के व्यक्तित्व और विचार दर्शन पर एक पुस्तक समाज के समक्ष प्रस्तुत

करके न केवल हम उनकी यादों को ताजा रख उन्हें सम्मानित करेंगे, बल्कि हम स्वयं भी सम्मानित होंगे, साथ ही भावी पीढ़ियाँ कुछ सीख ले पा सकेंगी। सामाजिक मूल्यों के संवाहक और सामाजिक चेतना के लिए समर्पित डॉ. साहब का जीवन समाज का स्वर्णिम अध्याय बनकर सदा चमकता रहेगा, इसी विश्वास के साथ यह पुस्तक आप सुधि पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ। सच बताऊँ, डॉ. साहब की जीवनी लिखकर उनके साथ जीने जैसी ही मैं खुशी महसूस कर रहा हूँ। यह मेरा सौभाग्य रहा कि उनकी गौरव गाथा लिखने का मुझे अवसर मिला। जितने दिन मैं लिखता रहा उनके आदर्शों और संघर्षों में मैं जीता रहा।

यूँ तो अनुभव के आधार पर डॉ. मोहन बाबू के बारे में कहने के लिये मेरे पास बहुत कुछ है जिसमें से कुछ तो मैंने समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपने संस्मरणात्मक लेखों में प्रस्तुत किया हैं। फिर भी राज्य भर में फैले उनके शुभेच्छु, सहकर्मी चिकित्सकों तथा समाज-सेवियों के मुख से उनके बारे में आँखों देखा हाल सुनकर ऐसा रोमांच हो आता था कि मन बरबस ही उनके व्यक्तित्व के चारों ओर एक दिव्य संसार की सृष्टि करने लगता और उस संसार में उन्हें महामानव की भूमिका में सहज विचरण करते हुये देखने लगता। तभी शायद मन में एक संकल्प ने जन्म लिया था-किसी दिन अवश्य उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पहलुओं को पुस्तक के रूप में सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करूँगा। यह पुस्तक उसी संकल्प का प्रतिफल है। 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' शीर्षक से यह पुस्तक अब आपके हाथ में है। आपको कैसी लगी, यह जानने का हमें बेसब्री से इंतजार है।

इस पुस्तक की सामग्री जुटाने एवं इसे पठनीय बनाने के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिन मित्रों ने हमें सहयोग प्रदान किया है हम उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक में कई लेखकों की संदर्भित रचनाओं का सहयोग लिया गया है। कई मित्रों व आत्मीयजनों ने महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की है। मैं उनके प्रति आभारी हूँ। मैं अपनी बेटी अंजलि को भी धन्यवाद देता हूँ, जिसने हमारी पांडुलिपि को कंप्यूटर पर शब्द-संयोजन कर,

बेहतर ढंग से टाईपसेटींग की है। इस पुस्तक को संवर्द्धित करने और रुचिकर बनाने में सुप्रसिद्ध पर्यावरणविद् तथा 'हरित वसुंधरा' के संपादक डॉ. मेहता नगेन्द्र सिंह, साहित्यकार युगल किशोर प्रसाद तथा अणुव्रत महासमिति, नई दिल्ली के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. धर्मेंद्र नाथ 'अमन' के विचार काफी लाभकारी सिद्ध हुए हैं। उनके अपेक्षित सहयोग के लिए मैं उनका आभारी हूँ। राष्ट्रीय विचार मंच के वरिष्ठ राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. देवेन्द्र आर्य ने इसकी भूमिका लिखकर न केवल इसकी सार्थकता बढ़ाई है, बल्कि मुझे कृतार्थ किया है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हम आभारी हैं उन सभी विद्वतजनों के, जिन्होंने इस पुस्तक पर अपना अभिमत, सम्मति तथा शुभाशंसा देकर हमें प्रोत्साहित किया है। इस पुस्तक में व्यक्त डॉ. मोहन बाबू के व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व पर हमारे विचार समाज की वर्तमान व भावी पीढ़ी को प्रेरित करने में उपयोगी साबित हों, तो मैं अपना यह प्रयत्न सार्थक समझूँगा।

13 फरवरी, 2005 — सिद्धेश्वर
'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, — संपादक, 'विचार दृष्टि'
विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652

अभिमत

जिंदगी का यथार्थपरक चित्रण

बिहार के तत्कालीन बैक्टेरियोलॉजिस्ट डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर लिखी सिद्धेश्वर जी की इस पुस्तक को पढ़ते हुए एक ऐसे संसार से गुजरने का अहसास होता है, जिसकी खूबसूरती और रौनक अब इतिहास की चीज बन चुकी है। कहना नहीं होगा कि इस धूसर, वीरान, उजाड़ और उदास दुनिया में डॉ. साहब की जिंदगी का यथार्थपरक चित्रण कर आज के लोगों में फिर से जिंदगी जीने की गरमाहट और चेहरों की मुस्कान लौटाने की एक ईमानदार कोशिश इस जीवनी में की गई है। कारण कि सिद्धेश्वर जी समाज के एक सधे व्यक्ति हैं जो बिना किसी वाद-प्रतिवाद में पड़े अपने समय और समाज के सच को बेलाग कह सकने का साहस रखते हैं। डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर सिद्धेश्वर जी की लिखी जीवनी मैंने शुरू से अंत तक पढ़ी। उम्र के 64 वें पड़ाव पर रहकर उनके जीवन के जो संस्मरण उन्होंने लिखे हैं, ये उनके पके-सधे जीवन के सच ही तो हैं। इनके लेखन की जिजीविषा प्रबुद्ध पाठक को मुग्ध करती है। उन्होंने अपनी इस कलाकृति में कई प्रयोग किये हैं। कला ही वह शक्ति है जो व्यक्ति के जीवन को नया आधार प्रदान कर उसे बदल डालती है। मोहन बाबू के संपूर्ण जीवन को इस पुस्तक ने आँखों के सामने जीवंत कर दिया।

आज जबकि समाज के सभी क्षेत्रों में लोग पद और पैसे के लिए अपने उसूलों और सिद्धांतों को तिलांजलि दे रहे हैं और प्रतिष्ठा एवं पुरस्कार पाने के लिए चाटूकारिता का सहारा ले रहे हैं सिद्धेश्वर जी एकाग्र भाव से और निष्ठापूर्वक समाज व देशोद्धार के लिए प्रयासरत हैं। अपनी निश्छल सादगी और धारदार कलम से देशवासियों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में अनवरत लगे हैं। आपने इस पुस्तक में डॉ. मोहन सिंह के व्यक्तित्व व कर्त्तृत्व्य से संबंधित अतीत को प्रस्तुत किया है जिन्हें याद करते हुए वर्तमान एवं भावी पीढ़ी सफलता के बड़े-बड़े सपने देख सकती है। हालांकि उनके लेखन को लेकर बहस की काफी संभावनाएँ हैं पर यह दावे

के साथ कहा जा सकता है कि डॉ. साहब मानवतावादी थे। सिद्धेश्वर जी ने उनके मानवतावादी यथार्थ को सामने लाने के लिए अनेक संस्मरण व उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। एक आलोचक के नजरिए से देखा जाए तो हर सफल रचना में व्यक्ति ही अपने या अपने समाज के आचरण के लिए उत्तरदायी होता है, व्यवस्था नहीं, क्योंकि भारतीय समाज में रहते हुए वे तमाम खतरे नहीं उठा सकते थे। उनके अनुसार परिवार व समाज टूटने का कारण पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति का अँधानुकरण है। यही व्यक्ति के मानसिक संताप का कारण है। इसे ही वह रिश्तों में बिखराव या सामाजिक विखंडन का कारण मानते हैं।

यह कहना यथोचित होगा कि इस पुस्तक में पाठक को अपने जीवन और अपने आसपास के माहौल का प्रतिबिंब दिखाई देता है और समाज की सच्चाई मुखरित होती है। इस कृति की सफलता का राज यह भी है कि इसका प्रवाह सरल और स्वाभाविक है। पढ़ते वक्त पाठक के मानस-पटल पर डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन की वास्तविकता रेखांकित हो आती है। पूरी पुस्तक में अवांक्षित कृत्रिमता नहीं देखने को मिलती। यह पुस्तक डॉ. मोहन सिंह जी को सिर्फ समझने और उनके मुकाबले करने की प्रेरणा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास ही नहीं है, बल्कि भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैली कुप्रवृतियों तथा विसंगतियों पर भी सिद्धेश्वर जी की पैनी निगाह गई है। इसे लेकर वे बकायदा जिरह करते हैं कि कैसे आजादी के बलिदानियों के सपने आज चकनाचूर हो रहे हैं और कैसे संकीर्णता, कट्टरता और समाज की फासीवादी प्रवृतियाँ देश के लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ उत्पन्न कर रही हैं। विश्वास है यह कृति समाज-सेवियों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिए काफ़ी उपयोगी होगी और हिंदी जगत में इसका स्वागत किया जाएगा।

साकेतपुरी, बेली रोड, पटना

रामेश्वर चौधरी
उपसचिव
बिहार विधानसभा, पटना

नवऊर्जा का संचार करती जीवनी

सुप्रसिद्ध पैथोलॉजिस्ट और समाज सेवी डॉ. मोहन सिंह जी का जीवन और उनके विचारों को ठीक-ठीक मूल्यांकन करने की आज महती अपेक्षा है, सामाजिक सरोकारों से जुड़े, लेखनी के धनी सिद्धेश्वर जी ने उनके जीवन, विचार और कार्यकलाप का परिचय कराने के लिए ही इस पुस्तक की रचना की। यों तो डॉ. साहब का जीवन एक खुली किताब की तरह रहा है जिसे आसानी से सब कोई पढ़ सकता था, किंतु उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व तथा समाज-साधना से बहुत से लोग आज भी अपरिचित हैं। यह प्रयास इसीलिए किया गया है। सिद्धेश्वर जी ने लगभग एक साल से अधिक समय में इसे संपन्न किया है।

त्याग, तपस्या और सरलता की प्रतिमूर्ति डॉ. मोहन सिंह से एक बार मिलकर उन्हें भूल जाना असंभव था। सिद्धेश्वर जी प्रायः उनके पास जाकर प्रोत्साहित हुआ करते थे। उसी का प्रतिफल है यह पुस्तक। डॉ. साहब के सर्वतोमुखी व्यक्तित्व, कर्म और मानवतावादी दृष्टिकोण का चित्रण लेखक ने जिस शिल्प और शैली मैं किया है और उनके चिंतन को नए परिवेश में प्रस्तुत कर जीर्ण-शीर्ण जीवन में नवप्राणों की नवऊर्जा का संचार जितने सरल एवं सहज ढंग से किया है उसे इन शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है-

सामाजिक हैं वे, यहाँ सामाजिकता का उपहार लाए हैं।

डॉ. साहब के सात्विक एवं निष्ठापूर्ण जीवन के उज्ज्वल पृष्ठों पर यदि दृष्टि डाली जाए तो एक विचारक की भाषा में इसमें प्रकाश की किरणें मिलेंगी, जो उनके व्यक्तित्व में समाहित थीं। सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद करनेवाले साधक डॉ. मोहन सिंह जी को लेखक ने कबीर के सदृश्य आत्मा के बादशाह के रूप में प्रस्तुत किया है। कबीर के जात-पात नहीं मानने के तथ्यों को जीवनीकार ने बहुत कुशल तरीके से दर्शाया है। डॉ. साहब कहा करते थे कि झूठा गर्व करने से क्या होगा-यह अतीतजीवी समाज की समझ में आना चाहिए। एक अच्छे पैथोलॉजिस्ट के साथ-साथ

एक अच्छे नेकदिल इंसान भी थे मोहन बाबू।

चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के वक्त स्वतंत्रता-संग्राम की आग में डॉ. साहब का कूदना और उनकी क्रांतिकारी विचारधारा का जिस रूप में सिद्धेश्वर जी ने वर्णन किया है वह उनके बाद के दिनों में भी बदली नहीं, क्योंकि उनके विचारों की ओजस्विता और निर्भीकता की पृष्ठभूमि ठोस थी। इसकी प्रतीति और प्रभाव पुस्तक के प्रसंगों में देखने को मिलता है। लेखक ने इसे बड़े सुंदर ढंग से रेखांकित किया है जो मानवीय चेतना को संस्पर्श करता है। इसलिए वह कभी-भी असंगत और प्रमाण विरूद्ध नहीं हो सकता। उन्होंने उनके विचार को बुद्धि की कसौटी पर कसा है। यह बुद्धि और चेतना इन्हें समाज धर्म से प्राप्त हुई। भविष्य में समाज उनकी सेवाओं से अवश्य लाभान्वित होगा, इसमें संदेह की गुँजाइश नहीं। लेखक को हार्दिक साधुवाद।

बी.114,बुद्धा कॉलोनी
पटना-800001
दूरभाष: 2532826

डॉ. कृष्णदेव प्रसाद
पूर्व संयुक्त निदेशक,
बिहार सरकार

एक खोजपूर्ण दस्तावेज

सिद्धेश्वर जी की यह पुस्तक डॉ. मोहन सिंह जी के संपूर्ण जीवन की गाथा का कौशल ही नहीं है, बल्कि आज के मध्यवर्गीय परिवार और तत्संबंधी समाज का एक खोजपूर्ण दस्तावेज भी है। समकालीन जीवन और समाज में घटनाओं के पीछे किस किस्म की मूल्यहीनता है, मुखौटे हैं और सार्वजनिक जीवन में किस तरह के 'खोटे सिक्कों' का चलन है, इसके विवरण भी यह कृति जुटाती है। सामाजिक प्रतिबद्धता से विछिन्न व्यक्तियों के बीच इसके नायक डॉ. मोहन सिंह हमारे जीवंत सामाजिक जीवन के एक ऐसे व्यक्तित्व हुए, जिन्होंने यह सदैव ध्यान रखा कि नया समाज कैसा बने और मनुष्य में उसकी मनुष्यता अक्षुण्ण रहे।

कृतिकार ने जीवनी के प्रचलित शिल्प से हटकर नितांत भिन्न किस्म के शिल्प और शैली का प्रयोग किया है जो पाठकों को सहज रूप से ग्राह्य है। डॉ. साहब की जिंदगी का इतिहास भी एक दूसरा पहलू रखता है, जिनका आरंभिक जीवन गाँवों, कस्बों में बीता है। वहाँ के सामाजिक मूल्य कुछ और ही थे। जीवनीकार के मन पर पड़ी उनकी छाप गहरी दिखती है। फिर उनके महानगरों के वातायन को उजागर करने में कृतिकार ने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखा है। इस झूठ और फरेब की दुनिया में जहाँ कहीं भी लेखक को 'सच' नहीं देखने को मिलता है, डॉ. साहब को एक सच्चे आदमी और समाज के आत्मीय सदस्य के रूप में चित्रित कर उन्होंने सच्चाई को बड़ी ईमानदारी से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

डॉ. साहब की यह जीवनी-वास्तव में एक 'सामाजिक आत्मस्वीकृति' है, सिद्धेश्वर जी मात्र एक माध्यम हैं। आज के युग में जहाँ प्रायः हर एक व्यक्तित्व विवादास्पद बन गया है और हर 'झूठ' बंधुओं द्वारा 'सच' सिद्ध किया जाता है, सिद्धेश्वर जी ने डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन को जानने और समझने की कोशिश की है तथा उनके व्यक्तित्व व कर्तृत्व की रेखाओं को उसी तरह खींचा है जैसे चाँदी के तारों को बनानेवाला कारीगर दोनों ओर से उसे बाँधकर खींचता है।

इस कृति से डॉ. मोहन सिंह के जीवन और सामाजिक व्यवस्था का

पता चलता है। इनमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनकी बदलती जीवन-व्यवस्था और बदलती हुई दृष्टि का संकेत उनके परंपरागत मान्य सिद्धांतों के बीच भी मिलता है। कृतिकार ने सदैव यह ध्यान रखा है कि डॉ. साहब की जीवन-व्यवस्था और उनकी दृष्टि को साथ-साथ रखा जाए, ताकि पाठकों को लेखक की सही दृष्टि समझने में आसानी हो।

पुस्तक में कई स्थानों पर नए-पुराने संदर्भों के बीच टकराहट के चित्र भी प्रस्तुत किए गए हैं। आज की दुनिया में आदमी कई बार अपने ही मित्रों, रिश्तेदारों और स्वयं अपने आपसे भागने का प्रयास करता है। नाते-रिश्तों का मूल्य निहायत निजी सुविधाओं और स्वार्थों पर आधारित होता जा रहा है। ऐसे वक्त में भी डॉ. मोहन सिंह की मानसिकता औरों से भिन्न थी जिसकी ओर लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता और सहजता से संकेत किया है।

विश्वास है इस पुस्तक से डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन को समझने में सहायता मिलेगी, क्योंकि लेखक उनके सारे आंदोलनों, मान्यताओं और भूमिकाओं के बीच से गुजरा है। इसी के बीच आज के आदमी की सही तलाश की जा सकती है। लेखक को कोटिश: साधुवाद।

जियालाल आर्य
पूर्व गृह आयुक्त, बिहार

'आर्य निवास'
23, आई.ए. एस. कॉलोनी
किदवईपुरी, पटना-1
दूरभाष: 2521224

संवेदना छलकाती पुस्तक

लोभ, स्वार्थ, कुंठा, ईर्ष्या, अनीति की कमाई, अहंकार तथा केवल अपना और अपने परिवार का हित चाहनेवाले व्यक्ति समस्याओं से घिरे रहते हैं और वही उन्हें दूसरों की नजरों से गिराते हैं। डॉ. मोहन सिंह जी इन चीजों से सदैव बचे रहे और झूठी वाहवाही तथा आत्मप्रशंसा के लिए कभी दंभ एवं अहं से नहीं भरे, क्योंकि वे जानते थे कि ये सब थोड़े ही समय के लिए मान प्रतिष्ठा देती हैं। डॉ. मोहन सिंह जी के संबंध में लेखक की यह धारणा सही है कि 'उनके आदर्श को आम जन ने इसलिए ग्रहण किया कि उन्होंने स्वयं अपने आदर्श को अपने जीवन में उतारा। केवल उपदेश से आदर्श भी नहीं चल सकता है। लोक जीवन में जबतक ऐसे व्यक्ति नहीं उतरते, स्वयं जिनके जीवन में वे आदर्श सक्रिय न हुए हों, तबतक लोग उन्हें ग्रहण नहीं करेगें।' कथनी और करनी में सामंजस्य रखने से मनुष्य के मन पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सिद्धेश्वर जी ने डॉ. साहब के संबंध में तार्किक दृष्टि से अपने संस्मरण लिपिबद्ध किए हैं जिसमें शुष्क विवेचना नहीं है। एक समर्थ पत्रकार व साहित्यकार की निश्पक्ष अभिव्यक्ति होने की वजह से यह पुस्तक आद्यांत रोचकता से परिपूर्ण है। डॉ. साहब के जीवन की तमाम प्रवृतियाँ लेखक के विलक्षण व्यक्तित्व में पुट-परिणत होकर रससिद्ध हो गई हैं। इस माने में सिद्धेश्वर जी ने हिंदी गद्य साहित्य को समृद्ध करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। लेखक के दिल से निकली हुई चीज पाठकों के दिल की गहराई तक पहुँचने में सफल होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इनकी गहरी अनुभूति से हिंदी को अनूठी चीजें मिल रही हैं। इसकी भाषा सरल, आकर्षक और हृदयग्राहिणी है। कारण कि पाठक के मन को रमाने की कला में लेखक निपुण हैं। समाज के प्रति प्रतिबद्धता और व्यक्तियों के बीच सद्भाव व सौहार्द पैदा करना सिद्धेश्वर जी जैसे कुशल साहित्य-शिल्पी का ही कर्त्तव्य है। इनकी पकड़ में लोकहित का सूत्र आ गया है। इनके द्वारा निर्मित चरित्र संवेदनाओं की निर्मल धारा में बहते हैं। उनके सतत चिंतन का ही परिणाम है कि 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' जैसी भावुक मन की गहरी संवेदना छलकाती पुस्तक पाठकों के समक्ष आ पाई है। उनकी

साहित्यिक साधना से पूर्णतः जीवंत व्यक्तित्व भूरिशः अभिनंदनीय है। यह ग्रंथ जीवनव्यापी विराट मेधा और चिंतन-मनन से प्रसूत एक उपयोगी और प्रेरणादायक ग्रंथ बन गया है। यह एक अत्यंत मौलिक जीवनी-कृति है जिसमें डॉ. साहब के जीवन के विभिन्न आयामों को चमकाने में कृतिकार सक्षम है और यही सामान्य लेखकों से उन्हें पृथक करता है। इस जीवनी के तहत डॉ. साहब पर सिद्धेश्वर जी की बातें कई दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' के लेखक की अपनी जीवनी एवं साहित्यिक सफर से जुड़े कुछ नए तथ्यों की भी जानकारी मिलती है इस कृति में।

असंतोष और क्षोभ से भरी आज की पीढ़ी के प्रति सदैव चिंतित रहनेवाले डॉ. मोहन सिंह जी के निष्कपट, शुद्ध, ललित जीवन की वास्तविकता को इस पुस्तक में प्रस्तुत कर लेखक ने समाज का अपार उपकार किया है तथा अनास्था, अशांति और अनाचार से मुक्ति पाने के लिए डॉ. साहब के जीवन से प्रेरणा लेने की उन्होंने सलाह दी है और इसी से उनकी स्मृति शेष को अपनी श्रद्धा-सुमन अर्पित किया जा सकता है। जो भोगा हुआ सत्य है, उसी को पाथेय बनाकर लेखक अपना व्यक्तित्व खड़ा करता है। इस पुस्तक के लेखक ने भी स्वाभिमानी किंतु औघड़ प्रकृति के डॉ. साहब के जीवन के माध्यम से सामाजिक विकृतियों-विद्रूपताओं को अपनी सिद्ध लेखनी से चित्रित और अंकित किया है और उनके जीवन के सभी स्तरों पर ली गई विचारावलि को बड़ी निर्भीकता से संकलित किया है। पत्रकारिता के लंबे सफर को तय कर रहे इस पुस्तक के लेखक सिद्धेश्वर जी इस माने में बधाई के पात्र हैं कि इसके द्वारा उन्होंने डॉ. साहब की जीवन-यात्रा को सार्थक बनाने तथा उनकी स्मृतियों को सुदूर भविष्य तक अपनी इंद्रधनुषी छटा फैलाने की दिशा में अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा प्रदर्शित की है। सिद्धांत और स्वाभिमान से कभी समझौता न करनेवाले डॉ. मोहन सिंह जी की स्मृति को नमन करते हुए इस कृति के लेखक को उनकी यादें ताजा रखने के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

क्वार्टर नं.सी-6, पथ सं०5, आर. ब्लॉक, पटना-1, दूर.: 2226905

डॉ. शाहिद जमील
राजभाषा पदाधिकारी(उर्दू)
राजभाषा विभाग, बिहार सरकार, पटना

संघर्षपूर्ण जीवन-यात्रा की मर्मकथा

धुन के पक्के, सुदृढ़ संकल्पी तथा संस्थाकल्प सिद्धेश्वर जी निःस्वार्थ भाव से दशकों से एक विचार और एक दृष्टि लेकर समाज, साहित्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में अनवरत प्रयासरत हैं। यह कृति स्वतंत्रता-सेनानी तथा सुप्रसिद्ध पैथोलॉजिस्ट डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर एक विश्लेषण प्रस्तुत करने का श्रमसाध्य कार्य है। इस कृति के माध्यम से दिवंगत डॉ. साहब के न केवल स्वतंत्रता-संग्राम में किए गए योगदान को पाठकों के लिए उपलब्ध कराया गया है, अपितु इसमें आजादी के बाद चिकित्सा तथा समाज के क्षेत्र में उनके अवदान के प्रचुर तत्त्व निहित हैं। निश्चय ही, इस इतिवृत से वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को डॉ. साहब के जीवन-संबंधी साक्ष्य और अनुदर्शन की सामग्री सहज ही सुलभ होगी।

मुझे हार्दिक संतोष है कि समाज के कर्मचेता साहित्य-साधक सिद्धेश्वर जी पाटलीपुत्र के एक कर्मठ समाज-सेवी के जीवन-दर्शन और उनकी सारस्वत-साधना की स्मृति-रक्षा के निमित्त तथा उनके परिचय के आकलन-कार्य के लिए अग्रसर हुए और उनकी सामाजिक निष्ठा का समुचित मूल्यांकन करते हुए उसे उन्होंने सरल, प्रांजल और प्रवाहपूर्ण भाषा शैली में बड़ी सावधानी से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का सत्प्रयास किया। निःसंदेह लेखक का यह अधिकारिक प्रयास डॉ. मोहन सिंह जी की संघर्षपूर्ण जीवन-यात्रा की मर्मकथा का प्रतिरूप बन गया है। उनका यह इतिवृत-लेखन निश्चित रूप से तात्त्विक शोध का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाएगा जिससे पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे। लेखक को हार्दिक बधाई।

4 बी., अनुसूया अपार्टमेंट — मेजर जेनरल के.एन. सिंह
शास्त्रीनगर, पटना-23 — केदारनाथ सिंह
दूरभाष:2285623

अद्यतन और सहज बोधगम्य जीवनी

आज जिन सामाजिक परिवर्तनों से हम गुजर रहे हैं, वे स्वत: स्फूर्त हैं। इन्हीं स्वत: स्फूर्त परिवर्तनों में भावी परिवर्तनों के बीज भी विद्यमान हैं, किंतु इन परिवर्तनों की गति और दिशा को नियंत्रित-निर्धारित करने का श्रम चिंतक और सर्जक करता है। काल के गर्भ में विनाश और विकास दोनों के ही बीज सदैव समरूप में विद्यमान रहते हैं। सर्जक का काम होता है उस विष-बेल को उखाड़कर अमृत-बीज का वपन करना। बिहार के सुप्रसिद्ध पैथोलॉजिस्ट एवं समाजसेवी डॉ. मोहन सिंह जी के संपूर्ण जीवन पर यह पुस्तक लिखकर सिद्धेश्वर जी ने सर्जक के रूप में अमृत-बीज वपन का काम किया है।

समाज में लाख दोष हों पर सर्जक समाज के भीतर से ही इन दोषों के निराकरण भी ढूँढ़ता है और परिवर्तन के क्रारक भी उत्पन्न करता है। जनसामान्य धारा में बहता है और चिंतक व सर्जक एक कुशल नाविक की तरह उस धारा में उतरकर भी बहाव से असंपृक्त रहता है। चिंतक को जल-प्रलय के बीच बीज-रक्षा के अपने शाश्वत कर्त्तव्य का पालन करना होता है। सिद्धेश्वर जी ने पाठकों एवं जनसामान्य के समक्ष यह कृति प्रस्तुत कर अपने उस शाश्वत कर्त्तव्य का पालन किया है जो स्तुत्य है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यक्ति की संपूर्ण स्वतंत्रता समाज और परिवार में ही प्रस्फुटित होती है। समाज और व्यक्ति का संबंध द्वंद्वात्मक नहीं, अन्योन्याश्रय-मूलक है। अत: समाज को छोड़कर व्यक्ति विकसित नहीं हो सकता। व्यक्ति परिवार और समाज की इकाई है। उसी में वह पलता-बढ़ता है। इसलिये उस परिवार और समाज के प्रति एक जवाबदेही भी होती है। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व का विकास भी समाज में रहकर ही हुआ है, इसे इन्होंने बखूबी समझा और जाना है।
समाज के प्रति अपनी उसी जवाबदेही के निर्वहन के लिये डॉ. मोहन सिंह की जीवनी जीवनीकार सिद्धेश्वर ने इस ढंग से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है कि यह सरस और पठनीय बन पड़ी है। अत्यंत सीधे और सहज ढंग से प्रस्तुत इस जीवनी में डॉ. साहब की विचारधाराओं को बड़े जतन से

समावेश किया गया है। सच कहा जाय तो यह एक अच्छे रचनात्मक गद्य लेखन का उदाहरण है। इसमें लेखक की रचनात्मक प्रतिभा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि इन्होंने जनरुचि गढ़नेवाले रोचक साहित्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जीवनीकार ने डॉ. साहब की ज़ीवनी पर खूब शोध करके लिखा है और इसे रोचक बनाया है जिससे पाठकों एवं शोध छात्रों के सहज कौतूहल की प्यास अवश्य बुझेगी क्योंकि इसे लेखक ने मधुर पेय बनाने का हर संभव प्रयास किया है और पेय की जगह इसमें झागदार मिथक एवं वितण्डावाद नहीं भरे हैं। एक लंबे अरसे के बाद जीवनी की इस किताब में जीवनीकार द्वारा प्रस्तुत यह टिप्पणी दिल को खुश करती है-"पैथोलॉजिकल जाँच-सम्मत चिंतन और समाज साधना के दो कूल-किनारों के बीच अहर्निश जिनकी जीवनी सरिता की उज्ज्वल और निर्मल जलधारा प्रवाहित होती रही है, उस शिखर साधक और समाजसेवी का एकीकृत नाम है-डॉ. मोहन सिंह।"

पाठक हमारी इस बात से सहमत होंगे कि सिद्धेश्वर जी धंधई लेखक नहीं हैं। फिर भी यदि उनके पूर्वाग्रह और आत्मस्फीति के प्रसंग हटा भी दिये जायें तब भी उनकी जीवनी उपलब्ध अकादमिक ग्रंथों से कहीं अधिक रोचक और पठनीय ठहरती है। दरअसल हमारे यहाँ होता यह है कि जीवनी की किताबें इधर नीरस, शुष्क और मानवीय स्पर्श से पूर्णतः रहित लिखी जा रही हैं। यह बात भाषा से उतनी नहीं जुड़ी जितनी चंद गुप्त वजहों से! पहली तो यह कि हमारे यहाँ जीवनी लेखन का काम विगत के सीधे जमीनी अध्ययन और ठोस साक्ष्यों को जुटाने की बजाय पुस्तकालयों में मौजूद संदर्भ ग्रंथों और टीकाओं पर आधारित रहा। दूसरे, हमारे यहाँ के विद्वान गहन शोध करके विशेषज्ञता हासिल करना प्रायः वक्त की बर्बादी मानते हैं। वस्तुतः कोई भी विद्वान या बुद्धिमान व्यक्ति गहन अध्ययन उसी बात का करता है, जिस पर उसे गर्व हो, या फिर जिसकी रूपरेखा वह अलग से स्पष्टतया चिंहित पाए। यद्यपि इधर इस देश ने लेखन के क्षेत्र में अद्भुत प्रतिभाएँ उपजाई हैं, फिर भी पता नहीं क्यों भारतीय लेखक जीवनी या विवरणात्मक इतिहास लिखने से प्रायः बचते रहे हैं। ऐसी स्थिति में इस

जीवनी के लेखक सिद्धेश्वर जी ने डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर सामान्य जिज्ञासु पाठकों के लिये अद्यतन और सहज बोधगम्य जीवनी की किताब लिखकर जीवनी साहित्य की समृद्धि में एक उल्लेखनीय योगदान किया है।

किसी भी देश व समाज के महापुरुषों में युवा पीढ़ी की रुचि जगाना, जीवनी लेखन में बेहतरी लाना और उसे वैज्ञानिक और संतुलित बनाने का काम तो वहाँ के जीवनीकारों तथा लेखकों का ही होता है, राजनेताओं का नहीं। जीवनी लेखन को तो यूँ टिकाए नहीं रखा जा सकता। उसे जीवित और हरकतभरा रखने के लिये सिद्धेश्वर जी जैसे इच्छाशक्ति और संकल्प से भरे लेखक चाहिए जो जी-जान से महापुरुषों व समाज-सेवियों की कद्र करे। लेखक ने डॉ. मोहन सिंह के साथ न्याय किया है मैं ऐसा मानता हूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि सिद्धेश्वर जी के इस प्रयास का साहित्य-जगत में समादर किया जाएगा, जिसके सहयोग के बिना क्या कोई भी सही जीवनी गढ़ी जा सकती है? जीवनीकार को कोटिशः साधुवाद।

'गीतिका'
रोड नं.2, आदित्यनगर
केसरीनगर, पटना-24
दूरभाष: 2287204

प्रो. साधुशरण
विभागाध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)
जैंयतपुर कॉलेज, डॉ० भीमराव अंबेडकर बिहार
विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

समाज की एक अक्षय निधि

'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा ' अपने आप में समाज की एक ऐसी अक्षय निधि है जो स्वतंत्रता सेनानी तथा सुप्रसिद्ध पैथोलॉजिस्ट डॉ. मोहन सिंह जी की स्मृति को समर्पित है और जिसके पठन से लोग उनके प्रति श्रद्धा विनत हो उठते हैं। आखिर तभी तो इस ग्रंथ के लेखक सिद्धेश्वर जी ने अपने प्राक्कथन में लिखा है-"उनका उन्मुक्त भाव से मिलना, रसात्मक बातों से घेर लेना, मीठी वाणी और हाव-भाव से स्नेह टपकना आज भी सब कुछ मेरे स्मृति-पटल पर एक-एक कर उभर रहे हैं। मैंने सोचा अपने आद्य पुरुष की जीवन गति से देशवासी अपरिचित रहें-यह कसकवाली बात थी। बस क्या था, मेरे मन की वही सोच और ममता वजह बनी एवं कतरे-कतरे जुड़ एक कृति बन गई-'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा'।

प्रस्तुत ग्रंथ में लेखक का विलक्षण अध्यवसाय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि उन्होंने कठिन परिश्रम करके डॉ. साहब के जीवन के प्राय: तमाम आयाम को अपनी सरल, सुबोध एवं प्रांजल भाषा-शैली के साँचे में ढाला है जिससे यह ग्रंथ पाठकों के लिए रोचक और पठनीय बन पड़ा है। यह ग्रंथ डॉ. साहब के स्मारक का काम करेगा और उनके प्रति इस युग का सम्मान-भाव प्रकट हो सकेगा। यही नहीं, इस ग्रंथ में व्यक्त विचार लेखकों एवं समाज के संवेदनशील सदस्यों को साधारण मानव के जीवन की अभिव्यक्ति के लिए उत्साहित करेगा, क्योंकि सरल, सीधा तथा स्वाभाविक आधुनिक युग का यह ग्रंथ केवल एक विशिष्ट वर्ग के लिए ही नहीं, बल्कि आमजन के लिए भी लिखा गया है। शुद्ध निरंकुश मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध इस ग्रंथ में लेखक ने डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन से अपनी कथावस्तु का चयन किया है और इसमें नए क्षितिजों का उन्मोचन हुआ है।

डॉ. मोहन सिंह एक साधक थे। समता उनके जीवन का मूल मंत्र था। उनके व्यक्तित्व में अपने-पराए को भेद-भाव नहीं था। अगड़ा-पिछड़ा अथवा हरिजन-परिजन का उनके मन में कोई द्वंद्व नहीं था। उन्होंने समाज के सभी वर्गों के प्रति अपनी उदारता का परिचय दिया। सिद्धेश्वर जी ने मोहन बाबू के समग्र जीवन पर ऐसा ग्रंथ लिखकर अनगिनत युवकों को प्रेरणा प्रदान की है।

इस ग्रंथ के लेखक सिद्धेश्वर जी की स्मरण-शक्ति इतनी पारदर्शक और पारखी है कि पिछले तीन दशक से अधिक समय से जुड़े डॉ. साहब के साथ

अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। दरअसल यह लेखक के व्यक्तित्व की एक विशेषता है कि वे एक गतिशील यात्री की तरह अपने पथ पर अग्रसर होते हुए समाज व साहित्य की सेवा में रत हैं। इनके समक्ष कोई अवरोध नहीं है। सच तो यह है कि एक गतिशील यात्री के लिए हर एक बाधा प्रगति का सोपान होता है। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे ही गतिशील यात्री हैं जो अपने रास्ते की बाधाओं की बिना परवाह किए आगे बढ़ रहे हैं और जिन्होंने सामाजिक जीवन की मुख्य धारा के अंदर एक लंबी लड़ाई लड़ी है। उन्होंने समाज की समस्याओं को लेकर संघर्ष किया है, तब जाकर उन्हें बिहार की राजधानी से राष्ट्रीय राजधानी में थोड़ी-सी जगह मिली है। पर यह जगह इतनी नहीं है कि वे पाँव पसारकर बैठ सकें। इसलिए आज जरूरत इस बात की है कि हम अपनी मानसिकता में बदलाव लाएँ। मानसिकता में बदलाव लाए बिना समाज नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि उस दिशा में सामाजिक मूल्यों के प्रति सार्थक प्रतिबद्धता उत्पन्न की जा सकती है। सिद्धेश्वर जी ने मोहन बाबू की इस जीवनी के माध्यम से यही कहने का प्रयास किया है।

इस ग्रंथ में सामाजिक यथार्थ आधुनिकता की एक सशक्त विशेषता के रूप में उभर कर आया है जो मोहन बाबू के व्यक्तित्व के केंद्र को भौतिक तथा बौद्धिक दुनिया से जोड़ता है और उसे व्यक्तिगत आस्था, पहचान तथा सामाजिक साझेदारी के बारे में आश्वस्त करता है। सामाजिक यथार्थ के इस जीवनी साहित्य में यह रेखांकित है कि डॉ. साहब की जड़ें धरती में थीं जो राष्ट्रीय संचेतना के रूप में पल्लिवित एवं पुष्पित हुई। अतीत और वर्तमान की दिशाओं के अंतर को पाटने में यह ग्रंथ समर्थ होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। इसके लेखक सिद्धेश्वर जी को हमारी हार्दिक बधाई एवं मोहन बाबू की स्मृ को नमन।

सी. डी.-239, सेक्टर 2 — रामदेव प्रसाद सिंह
पत्रा.-धूर्वा, राँची-4 — अध्यक्ष, सरदार पटेल क्लब
सेक्टर 2, राँची-4

अनुभव-संसार से जुड़ी जीवनी

डॉ. मोहन सिंह समाज व चिकित्सा-जगत की एक प्रमुख हस्ती थे। प्रस्तुत ग्रंथ के जरिये उनका व्यक्तित्व बिहार के जन-जीवन की उन सच्चाईयों को सामने लाता है जो यत्र-तत्र और यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में आई तो हैं, परंतु संवेदनाहीन समाचार बनकर। सिद्धेश्वर जी ने डॉ. साहब के जीवन पर यह पुस्तक पाठकों के सामने प्रस्तुत कर समाज में चेतना जगानेवाले एक ऐसे शख्स को सामने लाया है जो अंततः व्यवस्था और समाज के सामने हारता लगता था पर जिसने कभी हार मानी नहीं। वह विषम परिस्थितियों के चरम पर पहुँचने पर एक बार फिर से संघर्ष के लिये उठ खड़ा हुआ था। इस पुस्तक के माध्यम से डॉ. साहब के जीवन का संघर्ष राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक स्तर पर और निजी संबंधों के स्तर पर भी मिलता है। यह पुस्तक ग्रामीण समाज और शहरी समाज के संस्कारों और व्यवहार के द्वंद्व को सामने लाती है। निजी संबंधों में घर करती संवेदनहीनता और निजी स्वार्थ के कारण जीवन में समाता ठंडापन इस किताब में नजर आता है। संवेदना इस पुस्तक की विशेषता है।

रोजमर्रा की भाषा में लिखी गयी यह पुस्तक सीधे पाठकों के अनुभव संसार से जुड़ती है। सिद्धेश्वर जी की भाषा सहज और रवानगी लिये हुये है,जो पुस्तक को पठनीय बनाती है। डॉ. साहब के जीवन के विविध आयामों से संबंधित विभिन्न यथार्थ को सामने लाती है यह पुस्तक। बनते-बिगड़ते इंसानी रिश्तों के बीच पनपती सामाजिक विसंगतियाँ और समाज का गहराता संकट इसमें प्रमुख है। इसमें कही गई बातों में सहजता है और बोझिल साहित्यकता से दूर इसकी भाषा आमजन की भाषा है। इसके नायक भी हमारे आसपास ही विचरते हैं। अपने परिवेश के प्रति बेहद सजग इसके लेखक सिद्धेश्वर जी ने लेखन में जीवन के उन पक्षों को अपना निशाना बनाया है जहाँ विसंगतियाँ अधिक हैं, चाहे वह सामाजिक और निजी संबंध हो या राजनीति और न्याय व्यवस्था में। इनमें कम से कम शब्दों में पूरी बात कहने और संप्रेषित करने की क्षमता है जो इस कृति को प्रभावी बनाती है। एक ओर जहाँ व्यंग्यात्मकता इस रचना को मारक बनाती है, तो वहीं दूसरी ओर भाषा की सहजता इसे आत्मीय बनाती है।

यह पुस्तक एक ऐसे समाजसेवी को सामने लाती है जो आजादी के

बाद कुछ नहीं बदला और एक ऐसे समाज को सामने लाती है जिसमें सामंतशाही ही अपने नये-नये रूपों में कायम है। समाज में सतह के नीचे विक्षोभ की आग हमेशा सुलगती रहती है जिसे सिद्धेश्वर जी इस जीवनी के माध्यम से सामने लाते हैं। जीवनी का नायक डॉ. मोहन सिंह एक ऐसी ही आग के समान थे, जो जब जागते थे तो सारे बंधनों को जलाकर रख देते थे। सिद्धेश्वर जी के लेखन की विशेषता है नायक डॉ. साहब का जीवंत चित्रण। डॉ. मोहन सिंह इस पुस्तक के एक ऐसे जीवंत पात्र हैं जो गढ़े नहीं गये हैं, बल्कि हाड़मांस के हैं जिनके जीवन में शोषण का प्रतिरोध मिलता है, परंतु उसमें किसी तरह की कृत्रिम क्रांतिकारी भावना नजर नहीं आती। वे समाज और उसमें मौजूद प्रतिरोधी शक्तियों के यथार्थ रूप को सामने लाते हैं। इस पुस्तक में डॉ. मोहन सिंह के प्राय: समग्र जीवन का वर्णन सिद्धेश्वर जी ने पूरी तैयारी के साथ किया है।

मानवता का यह पुजारी 15 मई 2004 को पाटलीपुत्र में महाप्रयाण कर गया लेकिन उसके मूल्यवान विचार रह गये और उन विचारों को शाश्वतता प्रदान करने का श्रेय इस पुस्तक के लेखक सिद्धेश्वर जी को जाता है, जिन्होंने लगभग एक साल कठिन परिश्रम करके इस शोध एवं तथ्यपूर्ण पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक को पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे डॉ. मोहन सिंह कहीं गये नहीं हैं-वे वैसे ही वहीं हैं और खजाँची रोड के अपने क्लिनिक में बैठे पैथोलॉजिकल जाँच की मशीन पर अपनी आँख गड़ाये हैं, साथ ही बगल में बैठे अपने मित्रों एवं शुभेच्छुओं से बातें भी कर रहे हैं। सिद्धेश्वर जी ने उन्हें ठीक-ठीक पढ़ने का प्रयास किया है। सैकड़ों साल पुराने बरगद की हर जटा अपने आप में एक स्वतंत्र पेड़ बन जाती है। बरगद की उम्र लंबी होती है। वह स्मरण-शक्ति का मालिक होता है। डॉ. मोहन सिंह की शारीरिक उम्र तेरासी साल, मानसिक उम्र डेढ़-सौ साल और बौद्धिक एवं सामाजिक उम्र हजारों साल। वस्तुत: वे कहीं गये नहीं हैं, सिर्फ विचार, विवेक और आस्था के रूप में कायांतरित हुये हैं। उनके विचार एवं विवेक को जीवित रखनेवाले लेखक को साधुवाद।

ग्राम+पत्रा.-सोनमई
(पटना)

रामकृष्ण मेहता
पूर्व प्राचार्य, शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय, पटना

आपबीती और जगबीती का समन्वय

ऐसा कहा गया है कि जीवनी-लेखक के भी प्रधान गुण आत्मकथा लेखक के ही होते हैं। यदि जीवनी-लेखक और चरितनायक के बीच का रिश्ता दो समाजसेवियों के बीच आत्मीयता और अपनापन का हो तो कथात्मकता के गुण और भी बढ़ जाते हैं। लोक विश्वास कितना तार्किक और वैज्ञानिक होता है, कहना कठिन है, पर आत्मीयजनों को इसका संकेत पहले ही मिल जाया करता है। प्रस्तुत जीवनी-लेखक के साथ भी शायद कुछ ऐसी बात थी कि सिद्धेश्वर जी ने डॉ. साहब के जीवन-काल में ही इनकी जीवनी लिखना प्रारंभ कर दिया था। ऐसा लगता है कि सिद्धेश्वर जी को डॉ. मोहन सिंह जी की मृत्यु का पूर्वाभास पहले ही हो गया था, तभी तो उनके निधन के मात्र एक साल बाद ही उन्होंने जीवनी पूरी कर ली। ऐसे में कहा जा सकता है कि यह पुस्तक डॉ. साहब के जीवन की मुकम्मल जीवनी है, जो साहित्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है और जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह जीवनी साहित्य युवा पीढ़ी को सदैव देशप्रेम और समाजसेवा के लिये प्रेरित करता रहेगा, क्योंकि डॉ. साहब का स्वतंत्रता आंदोलन में एक अद्वितीय योगदान था। आपने अपने कार्यकलापों से जन-जन में उत्साह और राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने का काम किया। मेरा विश्वास है कि इस जीवनी के माध्यम से आज के मूल्यहीन होते जाते समाज को समझने में मदद मिल सकती है।

जब कोई रचनाकार इतिहास को अपनी रचना में उतारता है तो वह इतिहास नहीं रह जाता, बल्कि वह उसका यथार्थ होता है। डॉ. साहब के संदर्भ में इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह जीवनी डॉ. साहब के जीवन का जीता-जागता दस्तावेज है। कारण कि जीवनी-लेखक ने किताबी ज्ञान के आधार पर या सुनी-सुनायी बातों को एकत्र कर जीवनी नहीं लिखी, बल्कि अपने-अनुभवों को जीवनी में रूपांतरित किया। इस जीवनी का कथ्य ही नहीं, लेखक की भाषा और शब्द-चयन भी यथार्थपूर्ण हैं। इसमें जमीन का संस्पर्श दिखाई पड़ता है। जीवनी-लेखक ने इस जीवनी में आपबीती और जगबीती दोनों का समन्वय किया है। उनमें एक गहरी नैतिक आवाज है। इस कृति के माध्यम से इन्होंने जीवनी के सामाजिक पक्ष पर पूरा जोर दिया है। डॉ. मोहन सिंह उस मनुष्यता के प्रतीक थे जो व्यक्ति की निजता से ऊपर उठकर सामाजिकता का, व्यापक समाज के सार्थक

नियम का प्रतिनिधित्व करता है। उनके जीवन के हर आयाम में साहस, संकल्प और विश्वास का भाव भरा रहता था जिसे लेखक ने बड़ी सरस और रोचक ढंग से चित्रित किया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ. मोहन सिंह ने अपनी तीव्र भावना को निरंतर परिवर्तन तथा नये प्रयोगों द्वारा समाज में रेखांकित किया। यही कारण है कि डॉ. साहब को राष्ट्र-निर्माण और समाज सुधार की परंपरा का संवाहक माना जाता है। उन्होंने देश व समाज के गौरव को आकाश तक पहुँचाया। यह अलग बात है कि देहावसान के पूर्व जीवन-काल में ही उनके शय्या-ग्रस्त हो जाने के कारण सरदार पटेल छात्रावास पर उनकी पकड़ ढीली पड़ गयी और समाज की गरिमा को जो ठेस पहुँचा उससे हर कोई वाकिफ है। प्रयास यह हो कि उनके अथक प्रयास से निर्मित समाज की गौरवशाली परंपरा पर किसी तरह के छीटें न पड़े और समाज की सेवा के प्रति उनकी निष्ठा का प्रतीक बन चुकी यादगार की इस इमारत की एक-एक ईंट समाज की प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने की कोशिश करे तभी उनके प्रति श्रद्धा-भाव प्रदर्शित हो सकेगा। डॉ० साहब के जीवन पर लिखी यह किताब उन लोगों के लिए है जो जीवन के संताप को, उसकी आग को, और उसी जीवन के प्रति गहरी जिजीविषा को हथियार बनाकर चलते हैं। यह किताब उस हथियार की धार को और तेज करती है।

सिद्धेश्वर जी ने डॉ. साहब की इस जीवनी की रचना कर समाज के प्रति अपनी ईमानदारी और हार्दिक लगाव का परिचय तो दिया ही है, साथ ही अपनी अनवरत सृजन-साधना से हिंदी साहित्य में उन्होंने श्रीवृद्धि भी की है जिसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। निश्चय ही साहित्य जगत में इस जीवनी-साहित्य का समादर किया जायेगा। लेखक को मैं अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ और डॉ. मोहन सिंह जी की स्मृति को नमन करता हूँ।

पटना हड्डी एवं रीढ़ रोग अस्पताल — डॉ. विश्वेन्द्र कुमार सिन्हा
एच-3/ डॉक्टर्स कॉलोनी, कंकड़बाग — पी.एम.सी.एच., पटना
पटना-800020
दूरभाष: 2361180

समाजिक संदर्भों की पड़ताल

प्रख्यात चिकित्सक तथा हमारे गुरुदेव डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर आधारित यह पुस्तक हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार व पत्रकार सिद्धेश्वर जी के संस्मरणों एवं आलेखों का एक विशिष्ट और पठनीय संकलन है। यूँ तो लेखक ने मोहन बाबू के जीवन काल में उनकी जीवनी लिखना प्रारंभ कर दिया था, पर उनके महाप्रयाण के लगभग एक साल के बाद यह जीवनी-लेखन संपन्न हुआ। कलेवर में छोटी होते हुये भी यह पुस्तक एक स्वतंत्रता सेनानी एवं समाजसेवी की सासाराम के मौडिहाँ से पटना तक की आधी से अधिक सदी की लंबी जीवन-यात्रा की दास्तान मात्र नहीं, बल्कि जीवनी साहित्य के एक विशिष्ट काल-खंड का विश्वसनीय ऐतिहासिक दस्तावेज है।

क्योंकि सिद्धेश्वर जी मूलतः एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं और बाद में रचनाकार व पत्रकार, इसीलिये उनके संस्मरण आलेखों की तरह सरल और सरस हो जाते हैं, साथ ही उनके कथ्य सामाजिक परिवेश से अधिक जुड़ जाते हैं जो स्वाभाविक है। वे सामाजिक संदर्भों की पड़ताल तो करते ही हैं, रूढ़िगत स्थापनाओं के खिलाफ जनांदोलन की बात भी करते हैं, क्योंकि उसने धर्म, संस्कृति, लोकाचार आदि को रूढ़िग्रस्त कर तात्कालिक समाज की सच्चाई और जरूरत को सिरे से नकार रहा होता है। इन्हीं रूढ़िग्रस्त वर्जनाओं को तोड़ने के क्रम में डॉ. मोहन सिंह जी की भूमिका अहम रही जिसे बड़े स्पष्ट ढंग से लेखक ने रेखांकित किया है। उनकी गतिविधियों, तथ्यों और अंतर्धाराओं का बारीक विश्लेषण करके यह दिखाया गया है कि कैसे हमारे अनुभव-जगत और सामान्य अस्तित्व का हर गोशा और हर पल सामाजिक समीकरणों से गुँथा हुआ है और कैसे समाज और व्यक्ति बिना प्रयास के पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति को अँधाधूँध अंगीकार करने लगते हैं।

लेखक सिद्धेश्वर ने मोहन बाबू के व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर परंपरा और आधुनिकता के अंधर्विरोधों में फँसी वर्तमान पीढ़ी के जीवन और अंतर्मन एवं कर्म की एक कुशल सर्जन की तरह चीर-फाड़ की है।

उनकी यह चीर-फाड़ एक साथ समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक एवं गहरे अर्थ में नैतिक है। हिंदी में यह अपने तरह से एक वास्तविक समाजशास्त्र की शुरूआत है। इस जीवनी को पढ़ना एक तरह से खुद को समझना है। यह किताब उस सभ्य और प्रगतिशील नागरिक को जगाती है जिसे हम निराशा और नियतिवाद की काल कोठरी में कैद करके भूल चुके हैं।

सिद्धेश्वर जी प्रगतिशील पत्रकार हैं, परंतु प्रगतिशीलता उनके लिये कोई चौखटा नहीं। वे इसे कला-विरोधी और व्यक्ति-स्वातंत्र्य-विरोधी भी नहीं मानते। यह उनकी दृष्टि में एक व्यापक सामाजिक सोच है। वे लेखक की असली ताकत जनता को मानते हैं और डॉ. मोहन सिंह जैसे विशिष्ट व्यक्तित्व में सामान्य की तलाश को ही रचना मानते हैं। मोहन बाबू के जीवन के कई आयाम हैं जिसे सिद्धेश्वर जी ने अपनी इस कृति में उभारने की कोशिश की है और हमारे गुरुदेव के जीवन से जुड़ी कितनी यादें और कितनी बातें एक दूसरे के समानांतर और साथ चलती दिखाई देती हैं। सचमुच यादों और बातों का एक अद्‌भुत संकलन है यह जीवनी जिसकी प्रस्तुति में जीवनीकार ने अपनी अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया है।

दरअसल सिद्धेश्वर जी उन बुद्धिजीवियों में हैं, जो अपने लेखन, पत्रकारिता और हिंदी साहित्य की सेवा के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता का दायित्व भी बखूबी निभा रहे हैं। उनकी वैयक्तिक अभिरुचि और बौद्धिक एवं सामाजिक सरोकारों की आश्चर्यजनक विविधता तो काबिले-जिक्र है ही, वह एक अत्यंत सक्रिय, प्रतिबद्ध और निष्ठावान बुद्धिजीवी भी हैं। उनके सोचने, बोलने और लिखने के पीछे हमेशा वर्तमान की कोई चिंता एक लौ की तरह मौजूद होती है। वह किसी भी ज्ञानात्मक चर्चा को वर्तमान समाज या राजनीति के संदर्भ में प्रासंगिक बनाने और वर्तमान को समझने के लिये उसकी अनिवार्यता सिद्ध करने की क्षमता रखते हैं। हाल ही में इनकी दो किताबें-'सुर नहीं सुरीले' और 'जागरण के स्वर' प्रकाशित हुई जिनमें उनकी तमाम उक्त विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।

डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर लिखी इस पुस्तक में भी जिस प्रकार लेखक ने उनके प्रारंभिक जीवन से लेकर उनके दिलो-दिमाग,

रहन-सहन, आम बर्त्ताव और स्वभाव को दर्शाया है वह उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का ही कमाल है। उनके दैनंदिन जीवन की सामान्य गतियों, चाल और व्यवहार जहाँ इस कृति के लेखक को शानदार लगते हैं, वहीं उनका मौन भी उन्हें मुखर और अर्थपूर्ण लगता है, जो कई निरर्थकताओं को काटता है और अनेक वक्र सवालों के उत्तर देता है। पुस्तक की इन पंक्तियों में मोहन बाबू के प्रति लेखक में गहरी आत्मीयता झलकती है:-

'उनके सृजनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति प्रसन्नता, संतुष्टि, साहस, करुणा, सहृदयता और सहानुभूति आदि भावों के रूप में हुई और उनके सृजनात्मक चिंतन उनके आचरण तथा व्यवहार को गढ़कर उन्हें सौंदर्यवान बनाने में मददगार सिद्ध हुये। डॉ. साहब के भीतर यही कुछ ऐसा था, जो मेरे मन को बराबर आकृष्ट करता रहा और मैं उनकी स्नेहिल आत्मीयता की डोर में बँधता गया।'

कुल मिलाकर यह एक ऐसा जीवनी-साहित्य है जो यह उम्मीद जगाता है कि आनेवाले दिनों में सिद्धेश्वर जी महत्त्वपूर्ण जीवनी-लेखन कर्म के साथ सामने आयेंगे। जीवनीकारों, चिकित्सकों, साहित्य-प्रेमियों और समाजसेवियों के लिये यह पुस्तक वस्तुत: संग्रहणीय और उपयोगी सिद्ध होगी। यह जीवनी हार्दिक संवेदना के साथ लिखी गयी है। सिद्धेश्वर जी की रचनात्मकता के प्रति पूरा हिंदी साहित्य संसार सहृदय होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। लेखक को अपनी शुभकामनाएँ और हार्दिक बधाई देते हुये अपने गुरुदेव मोहन बाबू की स्मृति को मैं प्रणाम करता हूँ।

विद्यापति मार्ग
पटना-800001

डॉ. एस.एन. आर्य

समाज के लिए एक मूल्यवान निधि

सिद्धेश्वर जी की इस कृति में सफल संपादक के भी दर्शन होते हैं और सशक्त, सर्तक एवं सचेत लेखक के भी। आपने इसमें डॉ० मोहन सिंह जी के समग्र जीवन पर जो सामग्री प्रस्तुत की है उसके लिए आपकी स्मरण-शक्ति को मैं मुहुर्मुह: प्रणाम करता हूँ। आप शिद्दता से भी लिखते हैं और सिद्धता से भी। आप शब्दों के शिल्पी नहीं, जादूगर हैं। स्पष्टता और निर्भीकता से अभिव्यक्ति आजकल दुर्लभ हो रही है। आपका यह कर्मयोग प्रशंसनीय है। आपके अध्यवसाय के साथ आपके प्रौढ़-गुढ़ चिंतन से गवेषणात्मक क्षमता परिलक्षित होती है। आपकी इस कृति ने मेरे मन और मस्तिष्क को झकझोरने का बड़ा काम किया है।

मौजूदा दौर के समाज में सत्व व संस्कार का न होना अपने राष्ट्र के लिए घातक है तथा आनेवाली पीढ़ी के लिए जबर्दस्त दिग्भ्रमित करनेवाली स्थिति है। ऐसी विषम स्थिति में मोहन बाबू के जीवन पर लिखी यह जीवनी-साहित्य, नई पीढ़ी के संस्कार, मनोवृति और मानसिकता को न केवल दूषित होने से बचाएगा, बल्कि उन्हें सच्ची दिशा प्रदान कर उनमें समाज व देश के प्रति चेतना पैदा करने में सहायक सिद्ध होगा, क्योंकि आपने बड़े कौशल और तटस्थ भाव से डॉ० साहब के व्यक्तित्व पर चेतना की उँगलियाँ रखकर उनकी अंतर्कथा को रूपायित किया है। समाज के लिए यह कृति एक मूल्यवान निधि बन गई है। सर्वांग समृद्ध, उदबोधक, सार्थक, सामयिक और समाज व राष्ट्रहितैषी इस साहित्य में डॉ० साहब के जीवन यथार्थ को उद्घाटित कर आपने इसे हृदयग्राही बना दिया है।

मैं ऐसी सुंदर और उपयोगी कृति के लिए हृदय से बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस जीवनी का सर्वत्र स्वागत होगा।

'कैमूर कुँज'
श्रीकृष्णनगर, पटना-1

ई० कमला कांत सिंह,
पूर्व कार्यपालक अभियंता,
जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार

एक प्रेरक जीवन-कथा

जीवनी साहित्य की प्रतिष्ठित विधा है। इसकी गणना कथा-विधा में होती है। इसका स्वरूप संस्मरणात्मक होता है। जीवनीकार किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का संस्मरण लिखता है। यह किसी महान व्यक्तित्व की जीवनी-गाथा है, जिसे निस्संग होकर लिखना किसी सफल साहित्यकार के लिए ही संभव हो पाता है। कोई जब अपना आत्म-चरित खुद लिखता है, तो वह आत्मकथा कहलाती है। कोई अन्य किसी के बारे में लिखता है तो वह जीवनी साहित्य है। आत्म-कथा और जीवनी, दोनों की रचना में लेखक को तटस्थ होकर जीवन से संबद्ध घटनाओं को लिपिबद्ध करना होता है। इस तरह आत्म-कथा वस्तुतः इतिहास ही है-किसी महत् व्यक्तित्व का इतिहास। यह जीवन वृत्त है जिसका बिंदु व्यक्ति विशेष और जिसकी परिधि पूरा संसार है। व्यक्ति आखिर समाज, संसार में ही तो जन्म लेता, पलता-बढ़ता और कुशल नायक की तरह दुनिया के विशाल रंगमंच पर अपना 'पार्ट' अदा कर काल के गाल में समा जाता है। जीवनी या आत्म-कथा उसे चिरकाल तक जीवंत रखती है। व्यक्ति विशेष के क्रिया-कलापों को मानवता के व्यापक हित में चित्रित किया जाता है। मरकर भी वह व्यक्ति-विशेष महतादर्श छोड़ जाता है, पद चिन्ह छोड़ जाता है, लीक बना देता है, जिसके सहारे चलकर समाज का साधारण आदमी भी विशिष्टता प्राप्त कर लेता है।

अक्षर अमर होते हैं, उनका क्षरण नहीं होता। जीवनी या आत्म-कथा अक्षरों में निबद्ध हो अमर हो जाती है। अक्षरों से निर्मित शब्द ब्रह्म-स्वरूप हो जाते हैं, स्मृतियाँ युग-युगांतरों तक संचित रह पाती हैं। पिरामिडों में रखी मम्मियों, खूबसूरत पत्थरों से निर्मित ताजमहल का क्षरण हो जाता है, किंतु अक्षर निर्मित व्यक्ति विशेष की यशः काया चिरकाल तक प्रेरणा-पूँज बनी रहती है। एक ऐसी मशाल जिसे समय के थपेड़े बुझा नहीं पाते, सुनामी लहरें जिसे आत्मसात नहीं कर सकतीं, युग-युगांतरों तक प्रकाश-किरणें फूटती रहती हैं और जीवन-मग चिर काल तक प्रकाशित होता रहता है।

यह पुस्तक ऐसे ही एक सशक्त प्रेरक व्यक्तित्व की जीवनी है जो काया से तो हमारे बीच अब मौजूद नहीं है, किंतु जीवनीकार ने उसे अमरता प्रदान कर दी। जीवनीकार उस विशिष्ट व्यक्तित्व का हमराही रहा है,

मानवता की राह पर उसके जीवन-काल में साथ-साथ चलनेवाला। उस महान व्यक्तित्व के तिरोधान के पश्चात् भी जिसने अपनी राह नहीं बदली, आज भी वह उसी निष्ठा से जीवन-पथ पर प्रस्थित है।

जीवनीकार हैं ख्याति लब्ध पत्रकार और प्रतिष्ठित साहित्यकार सिद्धेश्वर, जिन्होंने मानव-मूल्यों की रक्षा और मानवतावादी विचारों के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए 'राष्ट्रीय विचार मंच' की स्थापना की है, जिसकी शाखाएँ देश के कोने-कोने में फैली हुयी हैं। सिद्धेश्वर जी का विरल व्यक्तित्व विशाल अक्षयवट है जिनकी भावनाएँ आकाश की ऊँचाई छूती हैं, विचारों की गहराई समुद्र के समान है और जिसके अंतस्तल में मानवता के प्रति असीम प्यार है। सिद्धेश्वर जी सामाजिक समता-समरसता के आग्रही हैं।

जीवनी लिखना, जिसकी जीवनी लिखी जा रही है, उसका जीवन जीना है। सिद्धांततः नहीं, जीवनीकार सिद्धेश्वर जी ने मोहन बाबू का व्यवहारिक जीवन जिया है। जीवनीकार मोहन बाबू का सहयात्री रहा है, उनके हर सामाजिक, सांगठनिक, सांस्कृतिक कार्यों में उनका साझीदार। मानना होगा कि स्व. मोहन बाबू ने महतादर्शों को व्यवहार में उतारकर एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। विशेष बात यह है कि उनके निधनोपरांत भी जीवनीकार उनका आदर्शपूर्ण जीवन उनकी ही भाँति कर्त्तव्य-निष्ठ होकर जी रहा है। मानव-मूल्यों के प्रति समर्पित स्व. मोहन बाबू ने चिकित्सा के ऊँचे प्राध्यापक पद पर आसीन रहकर दीन-दुखियों की सेवा से कभी मुँह नहीं मोड़ा। समाज में अपने ऊँचे गरिमापूर्ण स्थान को सामाजिक कार्यों के निष्पादन में उन्होंने कभी आड़े आने नहीं दिया। उनमें महाप्राण निराला जैसी सदाशयता थी, उनके अनुरूप उनमें उदारता थी और दुखी मानवता के प्रति उनके मन में भी करुणा का भाव था। जीवनीकार के श्रीमुख से एक संस्मरण मुझे सुनने को मिला-'मोहन बाबू की धर्मपत्नी ने स्नान घर में उनकी फटी गंजी देखकर उसी दिन नयी गंजी खरीदने का मन बनाया। अर्द्धांगिनी का साथ वे कैसे नहीं देते। दोनों आदर्श दंपति जो थे। जिस रिक्शे पर वे सवार हुए, चालक बूढ़ा और गरीब था, उसकी पीठ उनकी ओर थी। उस लाचार चालक की फटी बनियान पर उनकी नजर गयी। दुकान के

सामने जब रिक्शा रुका तो एक ही कीमत की दो गंजियाँ खरीदी गयीं। रिक्शेवाले को उन्होंने तुरंत नयी गंजी पहनवायी। अपनी गंजी लिये वे घर आए और दूसरे-तीसरे दिन नयी गंजी पहनी।' ऐसे दिल के उदार थे स्व. मोहन बाबू। ऐसी उदारता अगर हम-आप में आ जाय तो दुनिया से दुःख दारिद्रय का नामों-निशान मिट जाय। ऐसे उदारमना की जीवनी प्रस्तुत कर सिद्धेश्वर जी ने अपनी लेखनी को धन्य किया, अपनी कलम और पारदर्शी विद्वता का सही उपयोग किया। मेरे जैसा संकुचित सोच और विकृत मन-बुद्धिवाला ऐसे उदाराशय चरित्र पर क्या लिखेगा? कुछ लिखना मेरे लिए दुस्साहस है। किंतु अग्रज सिद्धेश्वर जी का स्नेहादेश मैं कैसे टाल सकता था? दरअसल महान पुरुषों की जीवनी/संस्मरण लिखने का अधि कार केवल उसे है जो खुद जिसकी जीवनी वह लिख रहा है, उसकी गुणवत्ता, मानवता, दानशीलता का लध्वांश भी लेखक में होना चाहिए। कहना होगा कि सिद्धेश्वर जी स्व. मोहन बाबू की तरह ही सद्‌गुणी और समाज तथा साहित्य-संस्कृति की सेवा और उन्नयन के प्रति कटिबद्ध और प्रतिबद्ध हैं।

विद्वान और उदाराशय जीवनीकार ने स्व. मोहन बाबू के अमूल्य और प्रेरक जीवन से संबंधित हर स्वर्णिम पहलू को बड़ी बारीकी से उजागर किया है और उनकी यह जीवनी साहित्य-संसार की अनमोल धरोहर बन चुकी है। लिखने की कला के क्या कहने? उनकी लेखनी से भाव-निर्झर फूटता है, उनके आलेख में विचारों की जलपूरित बावलियाँ हैं जहाँ मानव-मूल्यों के पारिजात खिलकर चतुर्दिक सुंगध बिखरते हुए जीवन के प्रति नयी आशा जगाने में सफल हैं। मैं जीवनीकार की सरस्वती को सादर प्रणाम करता हूँ, उनके अपूर्व लेखन की दाद देता हूँ। मेरे मन में स्पृहा जग गयी है, उनका रचना-कौशल देखकर। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जीवनीकार का स्नेह-सुख मुझे प्राप्त है, उनकी मुझ पर कृपा-दृष्टि है और वे मेरे लिए प्रेरक और प्रकाशपूँज हैं।

स्व. मोहन बाबू भी आजीवन संपर्क में आये लोगों को सद्‌प्रेरणा और स्नेह देते रहे। उन्होंने समाज को कुशलता के साथ जीवन जीने का गुर सिखाया, तथा अपने कथन को व्यवहार में उतारकर दिखाया। महामना

कबीर की उक्ति है-'कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय।' निस्संदेह मोहन बाबू ने समाज और सामाजिक स्वस्थ मूल्यों की रक्षा के लिए नीलकंठ की तरह विषपान किया और अमृत दूसरों को पिलाया। अपना सफल गार्हस्थ्य जीवन राजर्षि जनक की तरह जीते हुए देहासक्ति, मोहासक्ति से अपने को बचाए रखकर फल की चिंता किए बिना आजीवन कर्त्तव्य-रत रहनेवाला वह विरला पुरुष महान कर्मयोगी था। गीता-दर्शन को व्यवहार में उतारकर मोहन-बाबू ने जो लोक-शिक्षा हमें दी, कृतज्ञता ज्ञापन के रूप में उनका स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है, जीवनी तैयार की जा रही है। उनका चरित्र और जीवन-व्यवहार, उनकी सामाजिकता, उनका देश-प्रेम, उनका अहैतुक सेवा-भाव, उनकी उदारता-सब कुछ हमारे-आपके लिए अनुकरणीय है। उनकी जीवन-शैली को व्यवहार में उतारकर हम उस महापुरुष की बजाय अपना ही भला करेंगे, ऐसी मेरी मान्यता है।

कई उपशीर्षकों में प्रस्तुत उनकी जीवनी हमारे लिए प्रकाशपूँज है जो हमें चिरकाल तक जीवन की राह दिखाएगी, जिसे पढ़कर, अपने व्यवहार में उतारकर हम अपना ही जीवन-पथ प्रशस्त कर पाएँगे, ऐसी मेरी धारणा है। मोहन बाबू की पुण्यस्मृति को संजोकर, जीवनीकार ने समाज का, राष्ट्र का, मानवता का महनीय उपकार किया है, इसमें दो राय नहीं। मोहन बाबू सफल चिकित्सक के साथ-साथ जीवन-यज्ञ के पुरोधा हूँ, सेवा के आदर्श थे। अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा के कारण वे अपने जीवनकाल में तो आदृत हुए ही, मरणोपरांत भी उनकी स्मृतियाँ हमें सजग करनेवाली, आलस्य छोड़कर जीवन-पथ पर अग्रसर करने की प्रेरणा देनेवाली हैं। उनका महान व्यक्तित्व हमारे लिए प्रेरणा-पूँज रहा और जीवनीकार के सद्प्रयास से उसकी प्रभा पूरे समाज और देश पर छा गयी। विमलचंद्रिका के प्रकाश में अँधियाली कैसे टिके? सर्वत्र उजाला फैलाया मोहन बाबू ने जीते जी और उनके निधनोपरांत जीवनीकार ने उन्हें सदा के लिए प्रकाश बाँटनेवाला सूर्य बना दिया। स्वर्ग-सुख भोग रही वह महान आत्मा अपने विगत जीवन की प्रभा देख आह्लादित-आनंदित हों रही होगी। उनकी नि:स्वार्थ, निर्व्याज सेवा का फल आज उन्हें सूद सहित मिल गया। धन्य है वह महापुरुष जिसकी जीवनी लिखी जाती है, धन्य है वह जीवनीकार

जो उपकार का बदला जीवनी लिख कर चुकाता है। दोनों ही महान हैं। एक ने सफल जीवन जीकर तमाम लोगों को जीना सिखाया तो दूसरे ने जीवनी लिखकर जीने की राह दिखायी। काश, मैं जीवनी लिख पाता और मैं भी अमर हो पाता! सत्कर्म से जीवन में सफलता मिलती है, सेवा से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है, यह जीवनी की पांडुलिपि पढ़कर मैं जान पाया। अपने को मैं बड़भागी मानता हूँ कि मुझे अभिमत लिखने का सुअवसर मिला। यह अमूल्य जीवनी आदि से अंत तक पढ़े बिना अन्य किसी काम के लिए अवकाश नहीं दे पाएगी। जीवनीकार ने इसे उपन्यास की तरह रोचक बना दिया है। उत्कृष्ट शैली में लिखी यह जीवनी संग्रहणीय साहित्य की कोटि में आ गयी है। यह प्रेरक तथा पथप्रदर्शक अद्वितीय रचना है।

जीवन जीना एक कला है। मोहन बाबू ने सफल और कर्मठ जीवन जीकर इस कला को नया अर्थ दिया। और ऐसे सत्पुरुष की कलापूर्ण जिंदगी को कलात्मक ढंग से जीवनीकार ने उकेरा, इससे मोहन बाबू का जीवन सोलह कलाओं से युक्त पूनम का चाँद होकर निखरा। जीवनीकार की कला भी धन्य हो गयी। लिखने की यह कला किसी-किसी को ही आती है। आज की भौतिकवादी दुनिया में विरले ऐसे लेखक मिलते हैं। सिद्धेश्वर जी चंद विरले लेखकों में मूर्धन्य हैं। जिस व्यापक फलक पर मोहन बाबू की स्वर्णिम जिंदगी को उन्होंने उकेरा है, वह श्लाघ्य है। खूबी यह है कि उनके जीवन के हर महत्त्वपूर्ण क्षण को उन्होंने यादगार बना दिया। उनकी यह रचना पूर्ण और मोहन बाबू का संपूर्ण जीवन एक सुंदर आख्यायिका बन गयी जो सर्वथा पठनीय और संग्रहणीय है।

'ज्योति वह बुझ गयी, किंतु अमर-ज्योति बन चुकी '-इस पंक्ति के साथ अपनी तुच्छ वाणी को विराम देता हूँ।

बिहारीपथ न्यू विग्रहपुर, युगल किशोर प्रसाद
पटना-800001
दूरभाषः 3098021

थकती आशाओं का विश्वास

सार्त्र ने आत्मकथा में लिखा था कि 'लेखन एक बंदूक होता है। बंदूक सिर्फ उसका घोड़ा दबाने से ही काम नहीं करती। उससे निशाना लेने के लिए लंबे श्रमसाध्य और अभ्यास की जरूरत होती है। फिर बंदूक चलने पर निशाना ही नहीं लगाती, वह चलानेवाले को भी भरपूर धक्का देती है। कुछ निशानेवाजी तो सिर्फ कौशल के लिए होती है और कुछ कारगर'। लेखन भी बहुत कुछ ऐसी ही चीज है। इसके लिए भी लेखक को तैयार होना पड़ता है। सिद्धेश्वर जी इधर पिछले कई वर्षों से बहुत कुछ लिख रहे हैं तो उसके पीछे एक लंबे अरसे से लिखने-पढ़ने का उनका अभ्यास काम कर रहा है। किसी भी रचना को लिखने से पहले वे व्यापक अध्ययन करते हैं। अपने समय का और अपने इतिहास में जो कुछ लिखा गया उसे गंभीरता से वे पढ़ते हैं। दुनिया में क्या कुछ लिखा जा रहा है इसका भी बोध उन्हें है। आखिर तभी तो इधर एक-दो वर्षों के दौरान गद्य तथा पद्य में इनकी कई पुस्तकें आईं। पिछले वर्ष 2004 में गद्य में 'आत्ममंथन' के अतिरिक्त जापान से आयातित सेन्र्‌यू विधा में 'सुर नहीं सुरीले' तथा 'जागरण के स्वर' शीर्षक से दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। इस वर्ष प्रकाशनाधीन इनकी पुस्तकों में हैं- 'समकालीन यथार्थ-बोध', 'हम और हमारा समाज' और 'यह सच है'। इसी कड़ी में है भारत के स्वतंत्रता-संग्राम से जुड़े समाज-सेवी डॉ. माहन सिंह जी के समग्र जीवन पर आधारित जीवनी साहित्य--'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा'।

यह कृति समेटे हुए है अपूर्ण-परिपूर्णता, कितने ही अधूरे सपनों का आधार, कितनी ही अतृप्त इच्छाओं का विराम और थकती आशाओं का विश्वास। यह पुस्तक एक ऐसे चिकित्सक व समाजसेवी के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है, जिसे प्रसिद्धि होने से भय लगता था, प्रसिद्धि के मूल्य से भय लगता था, क्योंकि अक्सर प्रसिद्धि की लहर सिद्धि को डूबो देती है। आखिर तभी तो दिल्ली से प्रकाशित 'विचार दृष्टि' पत्रिका के यशस्वी संपादक सिद्धेश्वर जी ने मोहन बाबू के महाप्रयाण के पश्चात् उनकी प्रसिद्धि को अपनी लेखनी से सिद्ध किया है। निश्चित रूप से समाज के सदस्यों को सजग करने तथा आनेवाली पीढ़ी की आँखें खोलने में यह पुस्तक समर्थ होगी और साहित्य-जगत् में यह जीवनी साहित्य 'मील का पत्थर' साबित होगा। लेखक का यह प्रयास वंदनीय है और स्वस्थ समाज चिंतन के पथ पर एक प्रकाश-स्तंभ। सिद्धेश्वर जी हमारी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

गेट नं०89, मखदुमपुर, दीघा, पटना, दूरभाष-9431815342

डॉ. हेमंत कुमार सिंह (डॉ. हेमंत पटेल)
करनैती (रोहतास)

मौलिक व्यक्तित्त्व का आईना

मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि सिद्धेश्वर जी का लेखन उनकी मजबूरी नहीं, बल्कि उत्सव है, जो अकेले-अकेले नहीं होता। वह भी अपने हृदय में उठनेवाली अनुभूतियों, सुख-दुख के अनुभवों और दिल-दिमाग को झकझोर देनेवाले विचारों को दूसरों तक पहुँचाकर आनंद पाते हैं। यहाँ यह कहना यथोचित है कि इस कृति के लेखक को भी डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन की विभिन्न स्थितियों की अभिव्यक्ति पर आनंद की प्राप्ति हुई है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी अनुभूतियाँ ससीम कल्पनाओं को असीम बनाती और चिर-परिचित भावनाओं में वैचित्र्य उत्पन्न कर डॉ. साहब के मौलिक व्यक्तित्त्व को उजागर करती है। जीवन की अभिव्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक अभिव्यक्ति है, ऐसा मानना है गीति रचना के यशस्वी हस्ताक्षर आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री जी का। शास्त्री जी के मतानुसार हृदय के भाव और मस्तिष्क के विचार जब सामंजस्य पाकर स्थिर-गंभीर अनुभूति में परिवर्तित होते हैं तब आंतरिक प्रेरणा पाकर वही अनुभूति में परिवर्तित होते हैं, वही अनुभूति प्रतिभा के साँचे में ढलकर रचनात्मक साहित्य की किसी-न-किसी विधा का नाम और रूप ग्रहण कर लेती है।

डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन पर लिखी सिद्धेश्वर जी की प्रस्तुत कृति गहरी अनुभूति का ही विस्तीर्ण भाव विन्यास है। विषमता, अंतर्विरोध आदि का इस निर्मल प्रवाह में आभास तक नहीं मिलता। एक हल्की गूँज मन की ऐकांतिकता में सुनाई पड़ती है। लेखक ने और जीवनियों से थोड़ा हटकर डॉ. साहब के अस्तित्व को करीने से टटोलने की कोशिश की है। प्रदर्शन और बड़बोलेपन से रहित उनकी सादगी और कार्यशैली को लेखक ने इस ढंग से संजोया है जो हमें लाल बहादुर शास्त्री की याद ताजा कर देती है। यदि समाज व देश के लोग डॉ. साहब के सादगी पसंद संकेत को समझें तो समाज का भला होगा, क्योंकि आज के सार्वजनिक जीवन में

समाज-सेवियों एवं नेताओं के ठाट-बाट और सार्वजनिक धन का अपव्यय होते जिस प्रकार देखा जा रहा है उससे देश की जनता को उनसे घृणा होती जा रही है।

बुद्ध एवं महावीर की करुणा से लेकर महात्मा गाँधी की अहिंसा तक मानवीय संवेदना की जो कल्याणकारी धारा तथा डॉ. राममनोहर लोहिया की जो समाजवादी धारा इस देश में प्रवाहित होती रही है, इस पुस्तक के लेखक सिद्धेश्वर उससे आपादमस्तक आप्लावित हैं। आखिर तभी तो इस जीवनी में उनकी संवदेना कहीं सौहार्द, तो कहीं सामाजिक समरसता, तो कहीं सांप्रदायिक सद्‌भाव के रूप धारण करती है। यह सब किसी भी रचनाकार की केवल सामाजिक दृष्टि से नहीं, मानवीयता में उसकी गहन आस्था से ही संभव है। डॉ. मोहन सिंह जी की यह भंगिमा उसे एक स्मरणीय और अनुकरणीय छबि प्रदान करती है। वास्तव में सिद्धेश्वर जी डॉ. साहब के मनोवैज्ञानिक चित्रण के प्रति उतने प्रतिबद्ध नहीं दिखाई पड़ते हैं जितने उनके आदर्शों की फलश्रुति के प्रति। सामाजिक सरोकारों तथा साहित्य से जुड़े रहने के कारण ही सिद्धेश्वर जी को यह प्रवृति प्राप्त हुई है, ऐसा मेरा विश्वास है। सच तो यह है कि लेखक ने पात्र का निर्माण करने के लिए उसके पूरे जीवन में झाँका है। डॉ. साहब के बारे में जो बातें गढ़ी-गढ़ाई लगती हैं उनमें भी कथित विश्वसनीयता लेखक ने भर दी है। लेखक की इस जीवनी रूपी इमारत के ईंट-पत्थर डॉ. साहब के जीवन से उठाए गए हैं और गारा-सीमेंट है कल्पनाशीलता।

मोहन-मन के संवेगों को उद्‌घाटित करनेवाले जीवनीकार सिद्धेश्वर जी को हमारी हार्दिक बधाई, जिन्होंने ऐसी अच्छी कृति से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। इसकी महत्ता को स्वीकार कर पाठक इसका हृदय से स्वागत करेंगे ....साधुवाद।

ज्योति शंकर चौबे

83, एम. आई. जी.
हनुमान नगर
पटना-20
दूरभाष: 2351042

शुभाशंसा

जीवनी अनुपम और अनोखी

स्वतंत्रता-सेनानी रह चुके बिहार के तत्कालीन बैक्टेरियोलॉजिस्ट डॉ. मोहन सिंह जी का जीवन सफलता, सिद्धि और प्रसिद्धि की एक ऐसी कमनीय कहानी है जिसके नायक वे स्वयं थे और निर्माता भी। उनके विराट, व्यक्तित्व को शब्दों के ससीम घेरे में आबद्ध करना आसान काम नहीं क्योंकि शब्द ससीम है और उनका व्यक्तित्व असीम। उनके व्यक्तित्व की महिमा और महत्ता प्रकाश के सदृश उज्ज्वल होती रही और उनकी महानता सर्वव्यापी होते हुए भी लौकिक चक्षुओं से दृष्टिगोचर नहीं होती-वह तो प्रकाश और वायु के समान सर्वत्र व्याप्त होते हुए प्रत्येक स्थान को अँधकारहीन और प्राणमय बनाती रही। ऐसे असीम व्यक्तित्व को ससीम शब्दों में आबद्ध करने का जटिल काम 'विचार दृष्टि' के यशस्वी संपादक सिद्धेश्वर जैसे सिद्ध व्यक्ति ही कर सकते थे। राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका-'विचार दृष्टि' तथा हिंदी की स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से स्वयं भी इन्होंने पाठकों के बीच पर्याप्त प्रसिद्धि पाई है तथा अपने शिष्ट-मिष्ट व्यवहार एवं सरल, सहज तथा निर्भीक लेखन के कारण लोकप्रिय भी हैं। डॉ. मोहन सिंह जी के ओजस्वी और तेजस्वी जीवन को इन्होंने जिस प्रकार अपनी धारदार कलम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है, वह अनुपम है, अनोखा है।

डॉ. साहब के व्यक्तित्व की विविधता के भीतर जो साम्य और एकरूपता थी, जो मानवीय मर्यादाएँ रहीं, सिद्धेश्वर जी ने बड़े ही निष्पक्ष और निःसंकोच भाव से उसे इस पुस्तक में दर्शाया है। उनके अगाध ज्ञान और समाज के प्रति उनकी निष्ठा की थाह पाने की लेखक ने चेष्टा की है। उनके व्यकित्त्व में भरी-पूरी शांति, स्निग्धता और दिव्य सौम्यता का उन्होंने दर्शन कराया है। निश्चित रूप से वर्तमान एवं भावी पीढ़ी इसे पढ़कर, सुनकर और उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर आनंद और उल्लास का अनुभव करेगी।

आज आडंबर और प्रचार का युग है। बड़े-बड़े धर्माचार्य और

पीठाधीश भी इससे अछूते नहीं-पर डॉ. मोहन सिंह में न किसी आडंबर की प्रस्तावना थी, न प्रचार की भूमिका और न आत्म-श्लाघा का प्राक्कथन। दरअसल लोक-कल्याण की भूमिका में जो जीवन और चरित्र रहा करते हैं, व्यक्ति के सामाजिक जागरण के भीतर जो जीवन-दर्शन पीठिका के रूप में स्थित रहता है-वही व्यक्तित्व, जीवन-चरित्र और दर्शन डॉ. साहब का था। इसका चित्रण लेखक ने बखूबी एवं बड़े सुंदर ढंग से किया है। जीवन-संगीत के दो स्वर हैं-कठोरता और मृदुता। जो व्यक्ति इन दोनों का ठीक प्रयोग करना जानता है, वही मधुर ध्वनि निकाल सकता है और उसे शब्दों में बाँध सकता है। सिद्धेश्वर जी ने अपने हृदय के अंतस्तल से उभरे तथा लगातार तीन दशक से अधिक से डॉ. मोहन सिंह जी से जुड़े रिश्ते की वजह से इनके जीवन की गहराई में उतरकर अपने मन के भावों को कागज के पन्नों पर उतारा है। मैं समझता हूँ कि डॉ. साहब तो एक साधक थे ही, इस पुस्तक के लेखक ने भी अपनी साधना और कला के बल पर इसे पठनीय और संग्रहनीय बनाने की भरपूर कोशिश की है, क्योंकि इनका मस्तिष्क चिंतन की उर्वरस्थली है, हृदय साधना की रंगस्थली और जीवन कला की प्रयोगशाला है। लेखक जहाँ नवीन विचारों के अनुगामी दिखते हैं, वहीं प्राचीन परंपरा के भी परम उपासक हैं। इन्हें प्राचीनता से चिढ़ नहीं है, और न नवीनता से मोह ही है। इनके विचारानुसार जो श्रेष्ठ विचार हैं-चाहे वे प्राचीन हों या नवीन, उन्हें अपनाना चाहिए। डॉ. साहब के जीवन के जरिए लेखक ने उज्ज्वल प्रकाश समाज व देश में फैलाने का जो सत्प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। लेखक की लोकप्रियता का भी मेरी दृष्टि से यही कारण है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक का साहित्य जगत में गर्मजोशी के साथ स्वागत हो सकेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं इसकी शुभाशंसा करते हुए लेखक को बधाई देता हूँ। साधुवाद।.

....

बाकरगंज, बजाजा
पटना-3
दूरभाष: 2685639

प्रो. रामबुझावन सिंह
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
बी. एन. कॉलेज,
पटना विश्वविद्यालय

भूमिका

एक अपरिमेय व्यक्तित्व

कविता, कहानी, नाटक, डायरी, साक्षात्कार, यात्रा-वृतांत इत्यादि विभिन्न विधाओं की तरह जीवनी भी साहित्य की एक ऐसी महत्वपूर्ण विधा है जिसमें कोई लेखक किसी वरेण्य विशिष्ट व्यक्ति के अंतर-बाह्य स्वरूप का कलात्मक ढंग से चित्रण करता है। जीवनी आत्मकथा की सहोदरा है। अंतर सिर्फ यह है कि जब कोई व्यक्ति अपना जीवन चरित स्वयं लिखता है तो उसे 'आत्मकथा' की संज्ञा दी जाती है। इस पुस्तक में 'विचार दृष्टि' के संपादक श्री सिद्धेश्वर जी ने भारत के स्वतंत्रता-संग्राम से जुड़े डॉ० मोहन सिंह जी की जीवनगाथा का बड़ा रमणीय और रोचक निरूपण तटस्थ होकर किया है। इसलिए खूब बारीकी और कौशल से लिखी गई इस जीवनी की उपादेयता समाज के लिए बहुत है। इस प्रकार जीवनीकार ने हिंदी साहित्य को अपने सर्जन से समृद्ध भी किया है।

इस जीवनी का प्रणयन कर जीवंत जीवनीकार सिद्धेश्वर जी ने सुधी साधक डॉ. मोहन सिंह जी के अपरिमेय व्यक्तित्व की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है। यही नहीं, उन्होंने डॉ. साहब को एक कुशल पैथोलॉजिस्ट के साथ-साथ एक समर्पित समाज-सेवी के रूप में याद किया है। डॉ. साहब ने तीन दशक से भी अधिक के अपने सरकारी जीवन में न तो कभी सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग किया और न ही कर्त्तव्यहीनता का परिचय दिया। लेखक ने उनके इन गुणों के अतिरिक्त राष्ट्र के प्रति उनकी अटूट कर्त्तव्यनिष्ठा तथा स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गाँधी जी द्वारा स्थापित आदर्शों, मूल्यों एवं सिद्धांतों का अक्षरशः पालन करने की उनकी भूमिका को जिस मुखरता के साथ प्रस्तुत करने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है, उसकी बधाई दिये बिना नहीं रह सकता।

डॉ. साहब के भीतर सोए एक जनसेवी पुरुष तथा जिस प्रकार अपनी साधना, स्वाध्याय और तपस्या के बल पर पटना मेडिकल कॉलेज के

पैथोलॉजिकल विभागाध्यक्ष तथा बिहार के बैक्टेरियोलॉजिस्ट पद के अतिरिक्त समाज के उस वरेण्य सिंहासन पर वे प्रतिष्ठित हुए, उसे लेखक ने जिंदादिल शैली में बड़े सहज भाव से प्रस्तुत किए हैं, निष्पक्ष पाठक या आलोचक उनके गंभीर एवं विस्तृत अध्ययन-चिंतन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह लेखक की उदात्त भावना का द्योतक है। सचमुच लेखक ने पुस्तक के विविध शीर्षकों में उनके सान्निध्य का अमृत घोला है और इस कृति में संवेदनशील कला-रसिक हृदय की अभिव्यक्ति है। एक सच्चे रसज्ञ कलाकार की तरह हर शीर्षक में विस्तार के साथ डॉ. साहब के जीवन-दर्शन, विचार और सिद्धांत की व्याख्या कर उनका मूल्यांकन किया है।

इस पुस्तक के जरिए सिद्धेश्वर जी सामाजिक समरसता, मानवता की उदात्त, सौहार्दपूर्ण और मंगलमयी नियति के प्रति अपनी आस्था की उद्घोषणा करते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता और सद्भाव लेखक की बहुत बड़ी वैचारिक संपत्ति है जिसका दिग्दर्शन इस जीवनी में यत्र-तत्र-सर्वत्र होता है। डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन और उनके व्यक्तित्व के माध्यम से लेखक ने सामाजिक सरोकारों और मानवीय संबंधों का जैसा और जितना चित्रण किया है, वह उनकी समृद्ध कल्पना और अनुभवजन्य संपदा का ही प्रमाण है। डॉ. साहब से जुड़े अपने अनुभवों के संसार को जीवनीकार ने बड़े कौशल से इस पुस्तक में ढालकर अपनी लेखन-क्षमता का परिचय दिया है और यही क्षमता उन्हें एक श्रेष्ठ जीवनीकार की पंक्ति में लाकर खड़ा कर देती है। अपनी व्यंजक, प्रवाहमयी और प्रांजल भाषा में जीवनीकार ने जो विचार व्यक्त किए हैं, वे एक समाजवादी विचारक एवं सामाजिक संस्कृति के प्रवक्ता के विचार हैं। इधर हाल के वर्षों में 'पतझर की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले' तथा 'जागरण के स्वर' जैसे हाइकु एवं सेन्र्यू काव्य संग्रहों की रचना के पश्चात् 'समकालीन यथार्थ-बोध' तथा 'हम और हमारा समाज' सरीखे गंभीर लेखन की ओर प्रवृत सिद्धेश्वर जी के लिए साहित्य-सृजन एक सार्थक व्यसन हो गया है जिसे इन्होंने व्यवसाय के रूप में कभी नहीं अपनाया। इस पुस्तक का सृजन कर इन्होंने पूरे समाज और साहित्य-जगत् का विश्वास प्राप्त कर लिया है। अपनी उम्र के चौंसठवें पड़ाव में इस तरह की सुंदर, पठनीय और संग्रहणीय पुस्तक प्रदान कर इन्होंने हिंदी साहित्य को निश्चित रूप से समृद्ध किया है जिसके लिए इन्हें हमारी हार्दिक बधाई।

समाज के सुधार, परिष्कार और उद्धार तथा चिकित्सा के क्षेत्र में डॉ. मोहन सिंह जी ने क्या किया और कितना करना शेष है यह जानने और समझने के लिए 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' को पढ़ना सार्थक होगा, क्योंकि यह जीवनी जिस रूप में वर्णित है, वह समाज के अतीत का तो विवरण है ही, वर्तमान युग की व्यापक हलचलों का भी प्रमाण देती है। हमारे सारे सांस्कृतिक उपक्रमों और लोकतांत्रिक सदिच्छाओं के बावजूद अभी भी भारतीय समाज की स्थिति कितनी विषम है, यह चित्रित करते हुए जीवनीकार सिद्धेश्वर जी डॉ. साहब की अशेष जिजीविषा और समाज की नियति के प्रति भी संकेत करना नहीं भूलते।

यह जीवनी की एक ऐसी धुरी है जिसमें जीवनीकार ने उसे एक मनस्वी, विवेकशील, शालीन, संवेदनासंपन्न तथा अपने पेशे के प्रति ईमानदार व कुशल चिकित्सक को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है जो वस्तुतः इनकी लेखनी और अभिव्यक्ति का कमाल है। इनके सारस्वत सत्प्रयत्न की मैं वंदना करता हूँ। कहना नहीं होगा कि लेखक के प्रभाव से उनका लेखन-श्रम सार्थक हुआ है, क्योंकि इसके रचनाकार डॉ. साहब के माध्यम से जीवन की सलवटों और गाँठों को बिंब-दर-बिंब अपनी सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना अंकित करते हैं और वह उनके मूल चिंतन से जुड़ा है।

डॉ. साहब के जीवन से जुड़ी इस जीवनी में संगृहीत सामग्री अत्यंत प्रेरणादायक है, किंतु इसे समाज का कल्पतरु बनाता है इस पुस्तक का प्राक्कथन जिसमें श्री सिद्धेश्वर का अध्यवसाय, अनुसंधान वृत्ति, सामान्यीकरण और निष्कर्ष की प्रवृत्ति अपने संघनित रूप में व्यक्त हुई है। जीवनीकार की टिप्पणियाँ इस बात का प्रमाण है कि डॉ. साहब न केवल अपने समय के सवालों से जीवंत संवाद स्थापित करते थे, बल्कि अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सभी प्रकार के सवालों पर वे मंतव्य व्यक्त करते थे। आज जब उन प्रश्नों का सामना समाज व देश कर रहा है तो डॉ. साहब के विचारों की प्रासंगिकता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। और अंत में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि जो डॉ. मोहन सिंह जी से जुड़ नहीं पाये, उनके लिए यह पुस्तक विस्तार रूप से सबकुछ प्रस्तुत करती है जो हमारे व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए आज भी मार्गदर्शक और प्रेरणादायक है। लेखक के प्राक्कथन वक्तव्यों से स्पष्ट ध्वनित होता है कि

ग्रंथ के पीछे प्रमुख प्रयोजन सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति रुझान, उसकी जमीनी और जातीय संरचना एवं ऊर्जा को प्रतिध्वनित-रेखांकित करने का रहा है। 'निर्माण कालखंड' में समसामयिक सोच और संवेदना के विविध आयाम प्रस्तुत हुए हैं जिनमें आज की तथाकथित भौतिक समृद्धि के परिचायक मानुषी आस्था के विखंडन का सफल आकलन हुआ है। इसे पढ़कर अनन्य साहित्य-साधक और खोजी विद्वान् लेखक की समाजेतिहास बोध की सजगता का बोध होता है। वह किसी भी पूर्वाग्रह या दुराग्रह से सर्वथा मुक्त होकर तथ्य सापेक्ष एवं युक्तिसंगत प्रमाण-पूर्वक ऐतिहासिक संदर्भों का विवेचन-विश्लेषण करता है, अनेक भ्रामक अवधारणाओं, असंगत निष्कर्षों का उसने सर्तक खंडन किया है तथा साक्ष्यों के आधार पर वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराया है। इसमें समाजेतिहास की अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए भी लेखक का यह सत्प्रयास सराहनीय एवं सच्चे जिज्ञासुओं के लिए मार्गदर्शक प्रकाश-स्तंभ जैसा है। कृतिकार की संतुलित भाषा और सुबोध-रोचक शैली इस पुस्तक की सामग्री को एक महत्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज बना देने में सक्षम है।

यह जीवनी डॉ. साहब की संस्कृति और जीवन शैली का ऐसा जीवंत व हृदयग्राही चित्रण करती है जैसे जीवनीकार ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को आत्मसात कर लिया हो, कदाचित इसी तादात्म्य ने अनगिनत कल्पना व भाव के सूत्र जुटाए हैं। इस चित्रण में उनके कोमल, कठोर, विनोदपूर्ण, न्याय, सद्भाव, समरसता, गुणग्राहकता और सहयोग के अनेक प्रसंग मन को विभोर कर देते हैं। लेखक एक सफल जीवनीकार लगता है कारण कि नायक के चरित्रों और कथ्यों पर वह इस प्रकार प्रकाश डालता है कि पाठक बँधे रहें और जिज्ञासाएँ तृप्त होकर भी उद्दीप्त होती रहें। यह जीवनी किसी और भी सार्थक रचना की पृष्ठभूमि लगती है। आज की भौतिक छटपटाहट, संवेदनहीन, उबाऊ, नीरस, संघर्षमय और आपाधापी वाले जीवन में यह कृति नवरस का संचार करती है।

इस जीवनी के पाठकों को मैं बता दूँ कि 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' लिखते वक्त लेखक के पास न तो कोई नोट्स थे, न सामग्री, न पत्र और न किताब। इसके नायक के साथ लगभग तीन दशक से जुड़ी

स्मृतियाँ मात्र थीं। ये स्मृतियाँ कितनी सांद्रित आवेश में होंगी यह सब लिखते हुए। सच मानिए कम से कम हिंदी साहित्य के मौजूदा दौर में अपने समकालीनों पर तो मैंने इतनी तथ्यपरक टिप्पणियाँ बहुत कम ही देखी हैं। कई दशक पहले गुज़रे वक्त की एक-एक दास्तान को सिद्धेश्वर जैसा कोई लेखक ही इतने सजीव ढंग से और विस्तार से लिख सकता है। बारीकी से देखें तो यादों की बारात लिए यह लेखक अपने समय के स्वतंत्रता-सेनानी, चिकित्सक और समाजसेवी से बातचीत, उसके काम करने का ढंग और उस पर टिप्पणी से संस्मरणों का एक ऐसा घोल तैयार करता है कि समाजशास्त्रीय गद्य का अद्‌भुत नमूना बनकर तैयार हो जाता है। बालक मोहन से डॉ० मोहन सिंह तक की यात्रा एक ऐसे अकथ और संघर्ष की अंतर्कथा है, जिसका श्रवण व्यक्ति के मन को हिलाती तो है, लेकिन संघर्षों व दुःखों के बीच पहाड़ की तरह अडिग होने का साहस भी देती है।

पुस्तक के उपसंहार में बिखरे कुछ निष्कर्ष अद्‌भुत हैं- "डॉ० साहब के जीवन में हमने तीन बातों को पाया-सुरुचि, संस्कृति और शालीनता। सुरुचि इसलिए कि वे आपको ऊबने नहीं देंगे चाहे जितनी देर आप उनके समीप बैठे रहें। संस्कृति इसलिए कि आतिथ्य सत्कार में कहीं कोई कमी नहीं। उनकी झोली में मौसम के अनुसार आम, अमरूद, केले, अँगूर, सेव, नारंगी तो मिलते ही थे, यहाँ तक कि मीठे-मीठे बेर भी। शालीनता की तो मानों डॉ० साहब प्रतिमूर्ति ही थे। अपने हाथों से सेव, अमरूद काटकर आपकी ओर बढ़ाना तो जैसे उनकी आदत बन चुकी थी। किसी को यह भान नहीं होता था कि वह इतने बड़े तथा आत्मीयता से भरे व्यक्तित्व के समीप बैठा है।" इस जीवनी को पढ़ने के पश्चात् मैं दावे के साथ देश के किसी ज्ञात और अज्ञात स्वतंत्रता-सेनानी, चिकित्सक तथा समाजसेवी के बारे में कुछ कह, सुन सकता हूँ। साहित्य और इतिहास के पाठकों के लिए यह एक बेहद जरूरी किताब बन पड़ी है और इक्कीसवीं सदी की पीढ़ी के लिए साहित्य और इतिहास का अनूठा दस्तावेज। मानवीय संवेदनाओं के कुशल चितेरे डॉ. मोहन सिंह जी की स्मृति को नमन करते हुए इस ग्रंथ के रचयिता सिद्धेश्वर जी को पूरे आत्मीय भाव से मैं डॉ. साहब के प्रति उनकी गहरी आस्था और विश्वास के लिए मुबारकवाद देता हूँ और

आशा करता हूँ कि यह पुस्तक हिंदी जगत् के साथ-साथ पूरे समाज में अपनी सुरभि और सुगंध बिखेरेगी.....

'वाणी सदन', बी.-98, सूर्यनगर
गाजियाबाद-201011(उ.प्र.)
दूरभाष: 2622563
मोबाइल: 9810277622

डॉ. देवेन्द्र आर्य
रीडर (अवकाशप्राप्त),हिंदी विभाग
मोतीलाल नेहरू कॉलेज(सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

यह सत्य है कि डॉ. मोहन सिंह जी का भौतिक रूप हमसे बिछुड़ गया है, किंतु वह अभी भी मोहन मन से हमारे साथ हैं–

अब भी हैं साथ हमारे प्यारे मोहन,
परिवर्तित कर अपना रूप व जीवन।
छोड़ गये हैं वे स्मृतियाँ अनेक,
जो सदा रहेंगी हम सबके प्रेरक।

और यही स्मृतियाँ त्वरित हुई हैं इस पुस्तक में। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि डॉ. साहब के देहावसान के बाद न तो किसी पत्र-पत्रिका ने श्रद्धार्पण स्वरूप विशेषांक निकाला और न ही चिकित्सा-जगत ने ही उनकी स्मृति को संजोने का इर्षत-प्रयास किया। यह तो कहिये कि दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका 'विचार दृष्टि' तथा पटना से प्रकाशित सामाजिक जागरण की 'शोषित मुक्ति' जैसी पत्रिकाओं ने दो-चार लेख एवं संस्मरण प्रकाशित कर डॉ. मोहन सिंह जी के प्रति श्रद्धा व सम्मान के भाव अर्पित किये। सामाजिक तथा चिकित्सीय संगठनों ने भी मात्र रस्म-अदायगी के तौर पर छोटी-मोटी शोक-सभा का आयोजन कर अपने दायित्व की इतिश्री कर ली।

निश्चय ही डॉ. मोहन सिंह जी जैसे शीर्षस्थ बैक्टेरियोलॉजिस्ट एवं समाज सेवी के प्रति इस उपेक्षा और उदासीनता के निवारण हेतु मेरे पिताश्री सिद्धेश्वर जी के संकल्पित भाव का प्रतिफल है यह ग्रंथ, जिसके लेखों, संस्मरणों एवं लेखक की अनुभूतियों आदि से इस मनीषी महारथी के कर्मक्षेत्र एवं समाज-साधना के परिचय से पाठकीय संतुष्टि और अतृप्त जिज्ञासा-दोनों की अनुभूति होती है। अपनी सतत् सामाजिक तपश्चर्या से ख्याति एवं लोकप्रियता के उत्कर्ष पर पहुँचनेवाले मनीषी एवं पैथोलॉजिस्ट डॉ. मोहन बाबू के जीवन के बहुआयामों को इस पुस्तक में समावेश कर लेखक ने एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, जिससे डॉ. साहब सदैव याद किये जाते रहेंगे। सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली की ओर से इस कृति का प्रकाशन कर मुझे गर्व और गौरव का अनुभव होता है, क्योंकि

इसमें डॉ. साहब के प्रति लेखक की अगाध श्रद्धा तथा समाजसेवियों के प्रति उपेक्षा भाव के विरूद्ध उनके आक्रोश की अनुगूँज है। उन्होंने अपने दर्दीले आक्रोश को अपने प्राक्कथन में अभिव्यंजित करते हुए कहा है-"भले ही डॉ. साहब हमें छोड़कर चले गये, उनके दैहिक जीवन को विराम लग गया और वे अपनी सारी इच्छा, सारे मिलन, सारी यादों का घर अपने साथ लेकर चले गये, किंतु हमारी यादें तो मुखरित होंगी ही, जो समाज व साहित्य का एक अंग बनेगी। उनसे जुड़ी स्मृतियाँ समाज व साहित्य वाटिका का रसाल सिद्ध होंगी।"

वास्तव में पिताश्री का एक प्रकार से यह अति सफल एकल प्रयास है जिससे डॉ. मोहन बाबू के देवतुल्य व्यक्तित्व के साथ-साथ उनकी अनेकायामी सामाजिक-साधना, कर्मयोगी कर्मठता, श्रम-आराधना, संघर्षशीलता तथा चिकित्सक एवं स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में उनकी उपलब्धियों से प्रेरणादायी परिचय मिलता है। प्रकाशन की ओर से हम आभारी हैं डॉ. मोहन बाबू के सुपुत्र डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह तथा पुत्रवधू डॉ. रेखा सिंह के, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग कर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

आशा है, दो सौ पृष्ठीय कम मूल्यवाले अच्छे मुद्रण और आकर्षक साज-सज्जा से युक्त इस ग्रंथ का सर्वव्यापी स्वागत होगा और सुधी पाठक इसका समादर कर अपनी सम्मति से लेखक को अवगत कराने का अनुग्रह करेंगे।

16मार्च, 2005
'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर
विकास मार्ग, दिल्ली-92
फोन: 011-22530652
011-22059410

सुधीर रंजन
प्रकाशक
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

अनुक्रम

समर्पण.......... 3
प्राक्कथन......... 4
अभिमत.......... 15
सन्मति............ 41
शुभाशंसा............ 43
भूमिका......... 45
प्रकाशकीय.......... 51

खण्ड-एक
आरंभिक काल

1. यशस्वी मोहन का जन्म 58
2. मौडिहाँ के मोहन 59
3. परिवार और पुरखे 61
4. स्वतंत्रता-संग्राम के अमर पुरोधा 63
5. राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत 68
6. भूमंडलीकरण पर डॉ० साहब के विचार 74
7. गाँधी-विचारों के प्रबल समर्थक 77
8. भारतीयता के संरक्षक 81
9. सर्वोदय की भावना से आप्लावित 84
10. समाज में सुचिता और चारित्र्य के प्रतीक 87

खण्ड- दो
सेवा काल

1. डॉ. साहब से मेरा परिचय 97
2. डॉ. साहब: एक सुप्रसिद्ध पैथोलॉजिस्ट 100

खण्ड-तीन
सांगठनिक क्रियाकलाप काल

1. एक चिकित्सक के सामाजिक सरोकार 104
2. ऊँच-नीच को समाप्त करने का संकल्प 109
3. सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण 111

खण्ड-चार
निर्माण काल

1. लोकोन्मुखी विचारधारा के सतत संचालक 128
2. भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक 133
3. सदाचार और शिष्टाचार के प्रतिमान 137
4. आत्मबल एवं आत्मविश्वास से परिपूर्ण 140
5. कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान 141
6. सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति 142
7. मोहन बाबू का जीवन-दर्शन 143

खण्ड-पाँच
उपसंहार

1. प्रेरणा के अजस्र स्रोत 147
2. जीवन यात्रा के विभिन्न आयाम 150
3. कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व 153
4. सर्वधर्म समभाव के पोषक 154
5. कर्मठ व्यक्तित्व 157
6. शोषित, पीड़ित समाज के पक्षधर 158
7. सादगी और सात्विकता के प्रतीक 168
8. विनम्र एवं सहृदय व्यक्तित्व के धनी 170
9. तीक्ष्ण याद्दास्त 171
10. जीवन-वृत: एक नजर में 173

प्रेरणा के स्रोत

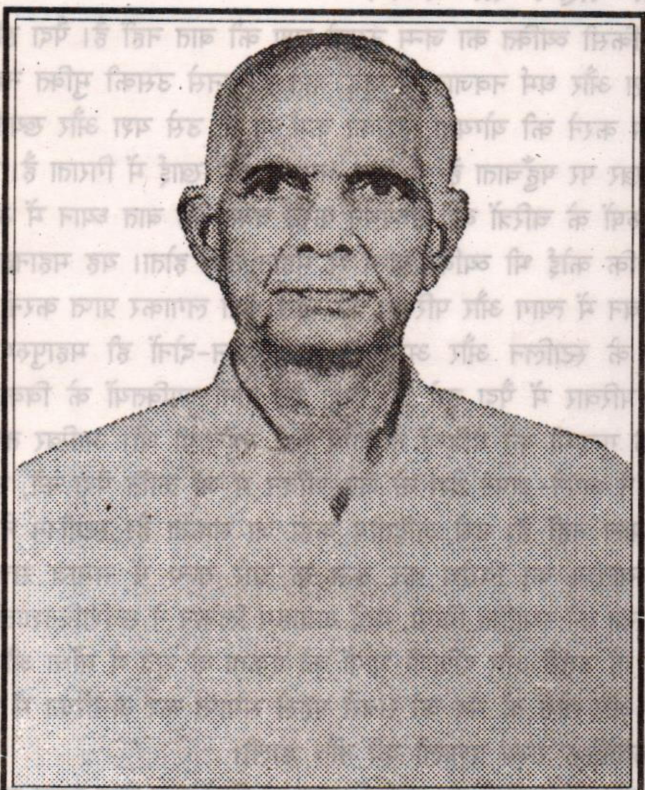

डॉ. मोहन सिंह

खण्ड-एक

आरंभिक काल

यशस्वी मोहन का जन्म :

किसी व्यक्ति का जन्म उसके वश की बात नहीं है। पैदा होते ही जाति, वंश और धर्म नवजात से जुड़ जाते हैं। इनसे उसकी मुक्ति नहीं है। परंतु काम करने की योग्यता, उसका कर्म या तो उसे यश और ख्याति के उच्च शिखर पर पहुँचाता है या फिर अपयश उसे खाई में गिराता है। विश्व के महापुरुषों के चरित्रों का अध्ययन करते वक्त यह बात ध्यान में अवश्य आती है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता। यह महानता उसे अपने जीवन में त्याग और परिश्रम की भारी पूँजी लगाकर प्राप्त करनी होती है। रूस के स्टालिन और अमेरिका के लिंकन-दोनों ही महापुरुष एक साधारण परिवार में पैदा हुये थे, किंतु इन दोनों व्यक्तियों के विकास में सामाजिक गुलामी की बेड़ियों ने बाधा नहीं पहुँचायी थी। आखिर तभी तो इन दोनों ने अपने-अपने देश के जन-जीवन में जो क्रांति पैदा की, उसकी कोई मिसाल नहीं है। उसे अद्वितीय कहा जा सकता है। स्टालिन ने जहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य का विरोध कर रूस के सारे राज्य में समाज सत्तावादी अर्थव्यवस्था को स्थापित किया, वहीं अब्राहम लिंकन ने सर्वशक्तिशाली देश अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी भागों को एकता के सूत्र में बाँधा और वहाँ के काले और गोरों के भेद को सबसे पहले समाप्त कर अमेरिका में पहली बार लोकतांत्रिक राज्य प्रणाली की नींव डाली।

बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारत के लिये एक ऐसा काल खंड था जब प्रत्येक देशवासी भारत माता की दासता में जकड़ी जंजीरों को येन-केन-प्रकारेण काटने के लिये कटिबद्ध था। बस एक ही लक्ष्य था, एक ही ध्येय था और एक ही आशा और विश्वास था कि किसी तरह भारत को गुलामी से मुक्त कराया जाये। बिहार की भूमि ने भी ऐसे-ऐसे सपूतों को जन्म दिया जिनकी एक चाह, एक ही राह और एक ही चिंतन था भारत माता की पराधीनता से मुक्ति। इस सदी में ऋषियों, मुनियों और महापुरुषों

ने इस धरती पर लगातार पाँच दशकों तक नवजागरण का उद्घोष किया। नवचेतना के मंत्र उच्चारित हुये। अलग-अलग क्षेत्रों में अपना कीर्तिमान स्थापित करनेवाले एक से बढ़कर एक महापुरुष, साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, राजनेता, विधिवेता, समाज सुधारक, धर्म व अध्यात्म के गुरु पैदा हुये, जिनके एक इशारे पर लाखों लोग न्योछावर होने को तैयार थे। इन्हीं पाँच दशकों में देश के हर क्षेत्र में एक से एक आला महापुरुष पथ प्रदर्शक बनकर आये, जिन्होंने देशवासियों को अपने आचारों और विचारों से अनुप्राणित किया। इन्हीं प्रकाशमान असंख्य दीपों के बीच आश्वस्तिपरक रोशनी करनेवाले मोहन बाबू भी पैदा हुये। 18 जनवरी 1921 को बिहार के सासाराम में ऐसे ही वक्त बालक मोहन का जन्म हुआ जब गाँधी जी के नेतृत्व में देश में रॉलेट बिल के खिलाफ आंदोलन चल रहा था और बिहार में इस अहिंसात्मक असहयोग कार्यक्रम का नेतृत्व राजेन्द्र बाबू कर रहे थे।

तमिल के प्राचीन ग्रंथ 'तिरुक्कुरल' में कहा गया है-

'जन्मो तो यशस्वी हो कर जन्मो,
नहीं तो न जन्मना श्रेष्ठ है।'

उक्त कथन के अनुसार मोहन बाबू भी आजादी के लिये छिड़ी क्रांति के वक्त यशस्वी होकर जन्मे और अपनी शिक्षा के दौरान ही स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़े। बाद के दिनों में उन्होंने उच्चादर्शों और मानव-मूल्यों की स्थापना की जो आज भी उतना ही प्रासंगिक और उपादेय हैं जितना तब थे।

मौडिहाँ के मोहन :

बिहार के रोहताष जिले में एक गाँव है मौडिहाँ। यह गाँव नोखा थाना के अंतर्गत आता है। मूलतः यह कुर्मी प्रधान गाँव है। 300 घरों की इस प्रमुख बस्ती में लगभग दो सौ कुर्मी परिवार हैं और बाकी अन्य जातियों के लोग हैं। किसे पता था कि इस मौडिहाँ गाँव में देवलाल सिंह और पोढारी देवी के घर एक ऐसा बालक जन्म लेगा, जो इस परिवार का नाम रौशन

करेगा। न जाने कितने लोग जन्म लेते हैं, जीते हैं, परिवार बनाते हैं, रोजी-रोटी कमाते हैं और इस संसार से अज्ञात-अनाम विदा हो जाते हैं। हर देश और जाति में ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया है और अपने व्यक्तित्व, विचार और कर्म से आगे आनेवाली पीढ़ियों को उन्होंने बहुत कुछ दिया है। उनका यह दान इतिहास में सुरक्षित है। वह हमारे लिए एक धरोहर है, एक पूँजी है।

ऐसी ही धरोहर, एक पूँजी वह बालक भी था, जिसने 18 जनवरी, 1921 को मौडिहाँ के एक किसान परिवार में जन्म लिया। उसका नाम पड़ा मोहन। बाद में यही डॉ. मोहन सिंह बिहार के सुप्रसिद्ध बैक्टेरियोलॉजिस्ट हुए। एक साधारण बालक से लेकर पटना मेडिकल कॉलेज के पैथोलॉजी विभागाध्यक्ष तथा बिहार के बैक्टेरियोलॉजिस्ट बनने तक की कहानी बताती है कि यदि व्यक्ति में लगन हो, विश्वास हो, मानवता के प्रति प्रेम हो, आस्था हो तो ऊँचे से ऊँचा पद पा सकता है। आदमी का गुण ही उसे बड़ा बनाता है। ये गुण कुछ तो परिवार और संस्कार से मिलते हैं, कुछ आसपास मिलते हैं और कुछ व्यक्ति की ही अपनी समझदारी, अनुभव और ज्ञान से मिलते हैं। मोहन बाबू जिस घर में जन्म लिए, जिस माटी में खेले, जिस समाज में जिए, वह कहीं और नहीं, यहीं है, जिसमें हम-आप जैसे करोड़ों लोग आज भी जीते हैं। लेकिन मोहन बाबू साधारण होते हुए भी असाधारण बने-इस रहस्य को जानने के लिए कुछ और भी बातों को जानना जरूरी है।

जिस प्रकार मिट्टी के घड़े को अच्छा या बुरा बनाने में कुम्हार का हाथ होता है, उसी प्रकार बालक का व्यक्तित्व सँवारने में माँ-बाप और परिवार का हाथ होता है। यह डॉ. मोहन सिंह जी का सौभाग्य था कि उनके परिवार और पुरखों में बहुत से अच्छे गुण थे। ये गुण बाद में मोहन बाबू के व्यक्तित्व में भी पुष्पित और पल्लवित हुए।

माता-पिता के अच्छे-बुरे संस्कारों का संतति पर अच्छा-बुरा असर निश्चित रूप से पड़ता है। वह बालक धन्य है जिसके माता-पिता अच्छे संस्कारवाले और सुरुचि-संपन्न हैं। गाँव हो या कस्बा, नगर-शहर

या महानगर, संस्कार का निर्माण तो परिवेश और संगति से होता है।

और फिर ग्राम्य-जीवन की सादगी, स्वच्छता, भोलापन, चारित्रिक निर्मलता के क्या कहने! आपसी भाईचारा और निःस्वार्थ भावना का असर खेतों-खलिहानों, गलियों में खेलते-कूदते बच्चों पर निश्चय ही पड़ता है।

मानना होगा कि मौडिहाँ के मोहन को माता-पिता से अच्छे संस्कारों की विरासत मिली। मौडिहाँ की धरती पर मोहन पल-बढ़कर बड़ा हुआ और उस गाँव की धरती की धूल पवित्र भस्म साबित हुई। बालक मोहन को माँ का आर्शीवाद प्राप्त हुआ जिससे उनका व्यक्तित्व कमल की तरह विकसित हो पाया। सुरभि पटना नगर में फैली और उनके शुभेच्छुओं की भीड़ बढ़ती गयी। वह भीड़ अब उनके निधनोपरांत उनकी स्मृतियों में सराबोर हो आज भी उनके पटना स्थित निवास पर उमड़ती है।

परिवार और पुरखे

डॉ. मोहन सिंह के बचपन ने जिस परिवार की बगिया में अपनी आँखें खोलीं, वह कई प्रकार के गुणों की सुगंध दे रही थी। परिवार के सभी सदस्यों में प्रेम था, पिता में समाज के प्रति सेवा भाव था। माता और दादी में धार्मिक भावना थी। परिवार के इन गुणों का प्रभाव मोहन के नन्हें दिल पर भला कैसे न पड़ता निश्चित रूप से उनके दिल पर असर पड़ा और आगे चलकर उनके व्यक्तित्व में फला-फूला भी। मोहन सिंह ने सदैव परिवार की मर्यादा, विद्याध्ययन और देश के काम को बड़ा माना। उन्होंने अपने व्यक्तिगत, सुख पर उतना ध्यान नहीं दिया। वे समाज से, परंपरा से, परिवार से सामंजस्य स्थापित करके चलनेवाले व्यक्ति थे। इन सारे गुणों का बीजारोपण मोहन बाबू के चरित्र में उनके बचपन से ही हो गया था।

मोहन बाबू के मन में हमेशा अपने से अधिक ध्यान दूसरों पर लगा रहता था। पुरुषार्थी और महत्वाकांक्षी होते हुए भी उनकी प्रवृति संतोष की थी। खूब पढ़-लिख कर नए विचारों का समर्थन करते थे, परंतु अपनी संस्कृति, अपनी मर्यादा और अपना विचार उन्हें हमेशा प्यारा रहा। निष्काम कर्मयोगी डॉ. साहब का वार्तालाप करते समय मक्खन से भी मृदुल और

पुष्प से भी कोमल व्यवहार होता था, किंतु तर्क एवं विचार चर्चा के वक्त बज्र से भी कठोर और चट्टान से भी अधिक दृढ़ता उनमें होती थी। बड़े ही व्यवहार कुशल और अपने विचारों पर अडिग, अटल तथा अकंप थे, पर कोई नाराज होकर नहीं लौटता था। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. साहब को मृदुल मधुर वाणी के वरदान के साथ तर्क- प्रवण- प्रज्ञा और सरस तथा सरल मानस प्राप्त हुआ था। वैसे भी इतिहास साक्षी है कि युग निर्माताओं का कोई निर्माण नहीं करता। उनकी ग्रहण-शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वे कोई भी निमित्त पाकर स्वयं अपनी मेधा व परिश्रम से निर्मित होते चले जाते हैं। डॉ. साहब के जीवन रूपी किताब का एक-एक पृष्ठ भी ऐसा ही है जिसमें राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक आंदोलन एवं सामाजिक संगठन के प्रति सतत् जागरूकता व सक्रियता बनती गई। जो मार्ग के सारे अवरोधों को अपने अदम्य साहस व धैर्य के साथ ढकेल कर किनारे कर देता है, वही नए युग का द्वार खोलनेवाला युग-प्रणेता कहलाता है और आनेवाली पीढ़ी उस प्रणम्य युंग-पुरुष को स्मरण करती हुई उसके द्वारा अन्वेषित मार्ग का अनुसरण करती है। डॉ. मोहन सिंह भी एक ऐसे ही युग-पुरुष अवतरित हुए, जिनके माता पिता भी धार्मिक एवं सामाजिक प्रवृति के व्यक्ति थे। माता-पिता के समान ही मोहन सिंह बचपन से सरल स्वभाव के रहे। उनके सद्व्यवहार से माता, पिता, भाई, बहन के अतिरिक्त गाँव के अन्य गुरुजन तथा परिजन भी प्रसन्न रहते थे।

10-12 वर्ष की अवस्था तक मोहन सिंह जी माता-पिता के पैतृक कार्य में भी सहयोग देते थे। आवश्यकता पड़ने पर पिता को कृषि कार्य में भी सहायता करते थे। माता-पिता की सामाजिकता से मोहन सिंह जी बचपन से ही प्रभावित हो गए थे।

पारिवारिकता

वस्तुतः पारिवारिकता, मोहन बाबू के स्वभाव का विशेष अंग थी। उनका परिवार बहुत बड़ा था-नातेदारों, रिश्तेदारों का ही नहीं, मित्रों और याचकों का भी। लेकिन याचकों के साथ भी वे दाता की तरह व्यवहार न कर मित्र की तरह करते थे। इस बृहत परिवार के बहुत सारे सदस्य उनसे

उपकृत भी होते थे, लेकिन वे किसी को यह अहसास नहीं होने देते थे कि वे किसी पर कोई अनुग्रह कर रहे हैं। इस संदर्भ में यह कहना यथोचित होगा कि जिस व्यक्ति का परिवार बड़ा होता है या जिसे भी उदार कहा जाता है उसकी पत्नी की हिस्सेदारी उसमें कम-से-कम आधी तो होती ही है, इसके बिना पुरुष चाहकर भी उदार नहीं हो सकता। इस प्रकार देखा जाये तो डॉ. साहब की उदारता के पीछे उनकी धर्मपत्नी का बड़ा हाथ था और उनकी पारिवारिकता के पीछे उनकी ग्रामीणता की प्रेरणा थी। गाँव से उनका मोह उनके कार्यकलापों में उनके सिर चढ़कर बोलता था। यद्यपि उन्होंने अपने जीवन के 50 से अधिक वर्ष शहरों में बिताये, तथापि उनके व्यक्तित्व और पृष्ठभूमि में मुख्य रूप से ग्रामीण छाप थी। यही कारण है कि जिस रास्ते से मोहन बाबू गाँव से शहर आये थे, उस पर उन्होंने धूल नहीं जमने दी। ऐसे वक्त मुझे याद आती हैं रमानाथ अवस्थी के गीत की ये पंक्तियाँ-

'भीड़ में भी रहता हूँ, वीरन के सहारे,
जैसे कोई मंदिर, किसी गाँव के किनारे।'

डॉ. साहब में कर्म के प्रति निष्ठा का भाव अपने माता-पिता और परिवार से मिला था।

स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधाः

बिहार एक ऐसा राज्य है जो भौतिक प्रगति के मानदंडों के आधार पर भले ही सब राज्यों से पीछे हो, पर राजनीतिक चेतना के मामले में सबसे आगे रहा है। हमारे स्वाधीनता आंदोलन का पहला मोर्चा यहीं बना। चंपारण के सत्याग्रह से ही स्वाधीनता आंदोलन को पहली खुराक मिली थी। 'भारत छोड़ो आंदोलन' की आग में सर्वाधिक तपनेवाले राज्यों में बिहार एक था। सन् 1942 में गाँधी के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में बिहार के सात नौजवान छात्र पटना सचिवालय पर तिरंगा फहराते हुए अँग्रेजी शासन की गोलियों के निशाना बने और हँसते-हँसते भारत माँ की बलिवेदी पर अपने प्राणों को न्योछावर किया। पटना सचिवालय के सामने सरदार

पटेल मार्ग और क्रांति मार्ग के चौराहे पर स्थित शहीद स्मारक इसका आज भी साक्षी है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण का भ्रष्टाचार के खिलाफ चला संपूर्ण क्रांति आंदोलन भी यहीं परवान चढ़ा। इन आंदोलनों ने जो नया नेतृत्व पैदा किया वह बेईमान, भ्रष्ट और खुदगर्ज निकला। हर आंदोलन भस्मासुर पैदा करता है जो अपने सर्जक को ही भस्म करने के लिए मचल उठता है। इन भस्मासुरों का एक-न-एक दिन अंत होता है और आंदोलन आगे बढ़ता है। अँग्रेज भस्मासुर का अंत स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेनेवाले सेनानियों के चलते हुआ। इन्हीं सेनानियों में से डॉ. मोहन सिंह भी एक निष्ठावान स्वतंत्रता-सेनानी थे, जिन्होंने गाँधी जी की पुकार पर सत्य और अहिंसा मूलक असहयोग आंदोलन से जुड़कर अँग्रेजों की कोपदृष्टि का भाजन बनना स्वीकार किया। जब अँग्रेजी फौज के दस्तों ने बर्बरता से उनके आंदोलन का दमन प्रारंभ किया तो वे भूमिगत रहकर गुरिला की तरह आंदोलन में अपने साथियों और स्वयं सेवकों को आजादी की लड़ाई के लिए मुस्तैदी से शिक्षित और संस्कारित करते रहे। उन्होंने आत्मविश्वास, निष्ठा और उम्मीद के साथ स्वतंत्रता, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए अपना कदम बढ़ाया।

सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में जिन देशवासियों के हृदय में देशभक्ति की भावना जागृत हो उठी थी उनमें छात्रगण भी सम्मिलित थे। डॉ. मोहन सिंह उन दिनों दरभंगा मेडिकल स्कूल में छात्र थे। वे भी इस आंदोलन में कूद पड़े और 11 अगस्त, 1942 को अपने सत्रह साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिए गए। 10 अगास्त, 1943 को जेल से छूटने के बाद पुनः दरभंगा मेडिकल स्कूल में जब वे पढ़ने गए, तो वहाँ के प्राचार्य डॉ. बी.एन. बनर्जी ने उनका नाम लिखने से इंकार कर दिया, किंतु मेडिकल स्कूल के तत्कालीन अधीक्षक कर्नल पालित के यह कहने पर कि ये सत्रह छात्र किसी चोरी-डकैती में नहीं, बल्कि देशहित के लिए जेल गए थे, उनके नाम लिखे गए। यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उन दिनों बिहार और उड़ीसा की सम्मिलित परीक्षा में डॉ. मोहन सिंह ने प्रथम स्थान प्राप्त कर सफलता हासिल की थी। और सन् 1945 में इन्होंने पटना

मेडिकल कॉलेज में संचनित पाठयक्रम (Condensed Course) में नामांकन कराया। फिर सन् 1947 में आपने एम.बी.बी.एस. की परीक्षा पास की।

चिकित्सा में रुचि रहने के बावजूद डॉ. साहब का स्वातंत्र्य आंदोलन से प्रभावित होना समय की माँग थी। गाँजी जी के आह्वान पर 1942 में उन्होंने एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई छोड़ दी और स्वतंत्रता-संग्राम में वे कूद पड़े। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले बनी अंतरिम सरकार के दौर में ही वे अपने साथी-सेनानियों के अवसरवाद से परिचित हो चुके थे, किंतु देश के विभाजन के दौर के खून-खराबे ने डॉ. साहब को भीतर तक झकझोर दिया था। उन्होंने अपने कई साथियों को सत्ता की ओर दौड़ लगाते देखा। सुविधाओं की लूटमार और राजनीतिक जोड़-तोड़ देखकर उस वक्त की राजनीति से उनका मोहभंग हो गया और ऐसी स्थिति में चिकित्सा के अध्ययन ने उन्हें फिर अपनी ओर आकर्षित किया और सन् 1947 में पटना मेडिकल कॉलेज से उन्होंने एम.बी.बी.एस. किया। फिर उसी कॉलेज के पैथोलॉजी विभाग में उन्हें नियुक्ति मिल गयी। चिकित्सा क्षेत्र के प्रख्यात चिकित्सक डॉ० यू० एन० शाही, डॉ० ए०के०एन० सिन्हा, डॉ० मधुसूदन दास, डॉ० विजय नारायण सिंह, डॉ० श्रीनिवास आदि उनके आत्मीय सहकर्मियों में थे। इनके अलावा भी शायद ही कोई चिकित्सक ऐसा होगा जो उनके सान्निध्य और आत्मीयता से वंचित रहा हो।

डॉ. मोहन सिंह बिहार के उन अमर पुरोधाओं में अपना स्थान रखते हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। दरअसल स्वतंत्रता-आंदोलन के परिवेश में बचपन पला और मूछों की रेख आजादी के साथ-साथ आई। बचपन और जवानी के बीच का काल भी विचित्र सपने का काल होता है। रात में कौन कहे, दिन में भी आदमी सपने देखता रहता है। डॉ. सिंह जन्म से ही राष्ट्रभक्ति के संस्कार में पले थे। सासाराम के शासकों द्वारा तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य की स्वामीभक्ति तथा राज्य में राजाओं के उत्पीड़न के विरोध में वे छात्र जीवन से ही संघर्षरत रहे। उन्होंने देश के अंदर चलनेवाले ब्रिटिश शासन के विरूद्ध आंदोलनों में

सक्रिय भाग लेकर उस समय आजादी का बिगुल बजाया था। सन् 1930 के 'सविनय अवज्ञा' तथा 'नमक सत्याग्रह' आंदोलनों में भाग लेकर उन्होंने सभा, जुलूस व प्रदर्शनों का आयोजन कर तथा पत्र-पत्रिकाओं में समाचार भेजकर महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन किया था। डॉ. सिंह एक साधारण किसान-परिवार के होते हुए भी स्वाभिमानपूर्वक राष्ट्रीय भावना के प्रतिनिधि के रूप में अनेक प्रकार के कष्ट सहे तथा अपने दायित्व पर अडिग रहकर सामंती अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करते रहे।

डॉ. मोहन सिंह बिहार के उन अतिविशिष्ट स्वतंत्रता सेनानियों में थे, जिन्होंने भारत के स्वातंत्र्य में एक सक्रिय सेनानी के रूप में अपनी सार्थक भूमिका निभाई थी। अपने प्रारंभिक जीवनकाल में वे देश की आजादी के लिए संघर्ष करते रहे और बाद में फिर चिकित्सा के माध्यम से एक लोक कल्याणकारी भारतीय समाज की संरचना में अपना चिकित्सीय योगदान भी देते रहे। सच तो यह है कि एक कर्त्तव्य-निष्ठ, ईमानदार और अपने पेशे के प्रति वफादारी का नाम ही डॉ. मोहन सिंह है जिनके मूल्यांकन में कुछ इजाफा नहीं किया जा सकता, पर उनके मूल्यों को स्मरण कर वर्तमान पीढ़ी को प्रेरित किया जा सकता है।

स्वतंत्रता के पूर्व और आजादी प्राप्ति के पश्चात् भी जब देशवासियों के सामाजिक और आर्थिक उन्नयन में गिरावट आती रही तो उनके समाधान के लिए चलाए गये वैचारिक-क्रांति के आंदोलन में डॉ. साहब ने यथासाध्य अपनी भागीदारी दी। स्वत्रंता के पूर्व आप जैसे निर्भीक थे वैसे ही निर्भीक आप स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी बने रहे। आपकी निर्भीकता ही आपके व्यक्तित्व का शृंगार थी।आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्यों को फिर से जन-जन तक पहुँचाना। आज कोई भी राजनीतिक पार्टी अपने को उन मूल्यों की वारिस नहीं कह सकती। आज जरूरत इस बात की है कि जिन हस्ताक्षरों ने स्वतंत्रता-संग्राम की लड़ाई लड़ी, मुसीबतें झेलीं तथा हँसते-हँसते अँग्रेजों की गोलियाँ खाईं उनके व्यक्तित्व को याद कर उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया जाए। केवल उपदेश से आदर्श भी नहीं चल सकता है।

लोकजीवन में जबतक डॉ. मोहन सिंह ऐसे व्यक्ति नहीं उतरते, स्वयं जिनके जीवन में वे आदर्श सक्रिय न हुए हों, तब तक लोक उन्हें ग्रहण नहीं करेगा। डॉ. मोहन सिंह के आदर्श को आमजन ने इसलिए ग्रहण किया कि उन्होंने स्वयं अपने आदर्श को अपने जीवन में उतारा। स्वतंत्रता के पूर्व और आजादी प्राप्ति के पश्चात् भी जब देशवासियों के सामाजिक और आर्थिक उन्नयन में गिरावट आती रही, तो उनके निराकरण के लिए उन्होंने अथक प्रयास किया और वैचारिक क्रांति में अपनी भागीदारी भी दी। इस प्रकार उनका जीवन परतंत्र और स्वतंत्र भारत की अनेक अविस्मरणीय घटनाओं का साक्षी रहा है।

आजादी के 57-58 सालों के बाद जब हम अपने स्वराज पर नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि उन असंख्य अनाम शहीदों के मुखमंडल पर जो तेज दमक रहा था, उस तेज पर भारत के कर्णधारों ने कालिख मल दी, हुतात्माओं के सपने खाक में मिल गए, रामराज्य का सपना दिखानेवाला युग पुरुष भी स्वर्ग में बैठा आँसू बहा रहा होगा। स्वतंत्र भारत में निर्धनता के अभिशाप से संतप्त जनता की यह दुर्दशा देखकर, नेताओं के चरित्र देखकर, भ्रष्टाचार की कीचड़ में सिर से पैर तक सना हिंदुस्तान देखकर, देश के होनहार प्रतिभाशाली नौजवानों और खेत-खलिहान के किसानों को रेल की पटरी पर लेटकर आत्महत्या करते हुए देखकर स्वर्ग में गाँधी, नेहरु, पटेल के साथ अब डॉ. मोहन सिंह की रूह भी तड़प उठी होगी। आज जब हम स्वतंत्रता सेनानी डॉ. मोहन सिंह को स्वतंत्रता-संग्राम के अमर पुरोधा के रूप में यहाँ चित्रित कर रहे हैं, तो हम देश के सजग नागरिक डॉ. साहब के व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर अपने आँसूओं के गंगाजल से उन काले घिनौने धब्बों को धोने का प्रयास करें।

राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत:

इसके पूर्व कि हम डॉ. साहब में राष्ट्रीयता की भावना को आँकें, राष्ट्रीयता की भावना के अर्थ से अवगत हो जाना अप्रासंगिक नहीं होगा।

देशभक्ति राष्ट्रीय भावना की आधारशिला है। देश की आजादी के पूर्व राष्ट्रीयता एक उमंग भर थी। केवल विदेशी शासन और अँग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध ही वह उमंग सीमित थी। उन दिनों राष्ट्रीयता के

सामाजिक तथा आर्थिक मूलों की ओर लोगों का ध्यान सामान्यतः नहीं जा सका था।

केवल उपनिवेशवाद की समाप्ति या सत्ता के परिवर्तन मात्र से ही सामाजिक संरचना में परिवर्तन संभव नहीं हो सकेगा, यह बात लोगों में स्पष्ट नहीं हो पायी थी, किंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत में यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि राष्ट्रीयता की भावना, जो सामाजिक तथा आर्थिक मूलों से अनिवार्यतः जुड़ी हुई है, हमारी सामाजिक संरचना एवं हमारी संस्कृति की आंतरिक चेतना को नियंत्रित करती है। आज राष्ट्र को एक ऐसी सामाजिक संस्कृति की आवश्यकता है जिसका साँचा राष्ट्रीय हो और जिसका विषय सार समाजवादी या समतावादी हो तथा सच्चे बंधुत्व पर निर्भर हो और जिसमें शोषण नहीं हो। स्वतंत्रता यानी शोषण से मुक्ति ही स्वातंत्र्योत्तर भारत की राष्ट्रीय भावना का मूल आधार है।

डॉ. मोहन सिंह इसी राष्ट्रीय भावना के पोषक रहे हैं। इनका जीवन राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत रहा। इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य बात है कि डॉ. साहब ने स्वतंत्रता-संग्राम में भी अपनी एक अहम् भूमिका अदा की है। आजादी हासिल करने के बाद देश में राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास जिस कदर होता जा रहा है तथा विखंडनकारी शक्तियाँ और पृथकतावादी प्रवृतियाँ जिस तेजी से जोर पकड़ती जा रही है, उससे डॉ. साहब का चिंतित होना स्वभाविक था। उनका स्पष्ट मत था कि हमारी नई पीढ़ी को राष्ट्रीय एकता के इन अपकारक घटकों की बारीक पहचान रखनी होगी तभी वे पृथकवादी, विखण्डनकारी और विघटनकारी शक्तियों की नई चुनौतियों का सामना कर सकेंगे। भारत जैसे विशाल देश की भावात्मक एकता और इसकी अखण्डता की रक्षा के लिये पारस्परिक सद्भाव एवं सहिष्णुता और समन्वय अत्यंत आवश्यक है।

राष्ट्र प्रेमी और स्वतंत्रता आंदोलन का सेनानी होना अलग बात है तथा एक सफल सामाजिक कार्यकर्त्ता होना सर्वथा भिन्न पहलू है। डॉ. साहब के जीवन की मेखला में पाना से अधिक खोना लिखा था। यही कारण है कि उस काल की आजादी की लड़ाई में शरीक रहनेवाले डॉ.

मोहन सिंह जी किसी पद की लालसा से अलग होकर बहुचर्चित पैथोलौजिस्ट तथा समाज के अग्रणी नेता के रूप में उपस्थित हुये। उनका जो योगदान समाज को मिला और जिस रूप में आज हम इन पंक्तियों में उनका गुणगान कर रहे हैं उससे आगे बढ़कर श्रद्धा के साथ आनेवाली पीढ़ी भी उन्हें याद करेगी। उनका ओज, उनकी ईमानदारी और उनके अंदर का निःस्वार्थ हृदय सागर में सीपी के समान सुरक्षित रहेगा और जब कभी लोग उसे सही रूप में ढूँढ़कर बाहर निकालेंगे, मोती की तरह प्रकाश बिखेरता रहेगा।

राष्ट्रीय एकता के संबंध में पूछे जाने पर डॉ. साहब कहते थे कि आज जहाँ एक तरफ हमारे यहाँ लोग राष्ट्रीय एकता की दुहाई देते नहीं थकते और दूसरी तरफ बेशर्मी से ऐसे काम करते हैं जो राष्ट्रीय एकता की जड़ों पर प्रहार करनेवाले हैं। मुश्किल यह है कि हमारे मन में आज राष्ट्रीयता की कोई स्पष्ट कल्पना ही नहीं है। विस्तार से वे कहते थे कि हमारी राष्ट्रीयता का एक मूल आधार हमारा संविधान है। उसकी प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समता के साथ बंधुता का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि यह मूल्य व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने के लिये है। उनका कहना था कि राष्ट्र की एकता तभी मजबूत हो सकती है जब देश में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को उचित सम्मान मिले और साथ ही हममें भाई-चारे का विकास हो। इसका एक निहितार्थ यह है कि यदि देश के किसी नागरिक अथवा नागरिक समूह को संदेह की नजर से देखा जाएगा, उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचाई जाएगी, उसके साथ भेदभाव किया जाएगा तो राष्ट्रीय एकता कभी मज़बूत नहीं होगी।

आज भारत के अनेक इलाकों में जो असंतोष, विद्रोह और अलगाव की प्रवृतियाँ दिखाई देती हैं उनके पीछे भी कारण वही है। हमने अभी तक आबादी के बड़े भाग को आर्थिक और सामाजिक न्याय से वंचित रखकर उसकी जायज आकांक्षाओं को प्रताड़ित किया है। बेरोजगारी और आय के असमान वितरण ने इस समस्या को और जटिल बनाया। गलत आर्थिक नीतियाँ, जो ऊपर के पाँच-सात प्रतिशत लोगों की हित-पोषक रहीं, अपनाई गई। सामाजिक न्याय के लिये संविधान में जो व्यवस्था की

गई थी, उसे राष्ट्रीय एकता का तमाशा करनेवाली पार्टियों, उच्च वर्गों, न्यायालयों और राजनेताओं द्वारा प्रताड़ित किया गया। सदियों से जिन जातियों के गर्व को वर्ण-व्यवस्था ने कुचला, उन्हें आज भी मानवीय गरिमा का एहसास नहीं कराया जा सका है। आरक्षण व्यवस्था को, जो वर्ण-व्यवस्था को तोड़ने का कारगर हथियार है, जातिवाद को बढ़ानेवाला कहकर पेश किया गया तथा समाज के कुछ वर्गों को भड़काया गया। इन सब कामों के चलते राष्ट्रीय एकता का स्वप्न भला कैसे पूरा हो सकेगा?

स्वतंत्रता-आंदोलन के सिद्धांत पर पूछे जाने पर उनका स्पष्ट मत था कि हमने धर्म, नस्ल, संस्कृति, भाषा और जाति को राष्ट्रीयता का आधार कभी नहीं माना। हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में धर्म के आधार पर बने दो राष्ट्रों के सिद्धांत का लगातार विरोध किया गया, खासकर बापू और लौह पुरुष सरदार पटेल के द्वारा। स्वतंत्रता आंदोलन के शुरू से ही हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी आदि फिरकों का भेद समाप्त करके इस देश को सभी भारतवासियों का देश मानने का आग्रह रहा। इसके अतिरिक्त इसमें समाज की ऊँच-नीच की दीवारों को तोड़ने और समाज के सभी वर्गों को समान साझेदारी देने का भाव भी रहा। किंतु आज स्थिति ठीक इसके विपरीत दीख रही है। सत्ता तथा राजनीति के उच्च शिखर को समाज के कुछ उच्च वर्ग के ही लोग कब्जा किये बैठे हैं जिसके फलस्वरूप समाज में आज असंतोष, विद्रोह तथा अलगाववाद की प्रवृतियों के अतिरिक्त सत्ता में भागीदारी की ललक दिखाई दे रही है।

किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने में वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। और इस राष्ट्रीय चेतना को बाँधे रखने के लिए वहाँ के लोगों में सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के सूत्र होने चाहिए। राष्ट्रीयता की भावना, अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर गर्व और स्वाभिमान की शक्ति, एकता पर बल-इन सबकी चेतना फैलाने में नागरिकों का योगदान होता है।

राष्ट्रीय चेतना कोई निश्चेष्ट भावना नहीं है, बल्कि एक अत्यंत गतिमान, उत्तप्रेरक तथा स्फूर्तिदायक चेतना है, जो मनुष्यों के अपने राष्ट्र के

उत्थान एवं समृद्धि हेतु संगठित रूप से प्रयास करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। अतः राष्ट्रीयता एक विचार है, एक विचार शक्ति है, जो मानव के मस्तिष्क और हृदय को नवीन विचारों तथा मनोभावों से युक्त कर देती है एवं उसे अपनी चेतना को संघटन क्रिया के कार्यों में परिवर्तित करने के लिए प्रेरित करती है। डॉ. मोहन सिंह में यही भावना थी जिसके कारण उन्होंने राष्ट्र के उत्थान एवं समृद्धि हेतु संगठित रूप से प्रयास करने की प्रेरणा प्रदान की। राष्ट्रीयता के विकास में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ. साहब ने समकालीन शासकों के अत्याचारों की भर्त्सना की और जातीय ऊँच-नीच का सदैव विरोध किया। उन्होंने किसानों व मजदूरों की शोचनीय दशा को सुधारने का प्रयास किया। स्वतंत्रता-संग्राम की अवधि में जिन मजदूरों की हड्डियों पर उन दिनों प्रासाद खड़े थे और जिनके आँसू एवं रक्त की बूँदे जमकर अमीरों के मोती और लाल का रूप धारण करती थी, कर्मचारी गणराज्य का और अपना उदर किसानों का खून चूस-चूसकर भरते थे और जिनकी मजदूरी अक्सर कोड़े होती थी, उनकी दशा सुधारने के लिए सरकार की नीतियों का डॉ. साहब ने विरोध किया और चलाए गए आंदोलन में वे शामिल हुए। जो काम उन्होंने सीमित रूप में किया वह भी राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर ही किया। अतः उस युग के वातावरण की कसौटी पर वे खरे उतरे। परतंत्र देश के लिए यह गर्व की बात है कि उसके नागरिकों का अतीत गौरवपूर्ण रहा है। गौरवमय अतीत के सहारे ही गौरवमय भविष्य की आशा की जा सकती है। **डॉ. साहब एवं स्वदेश के महान अतीत पर आज हम निश्चित रूप से गौरव का अनुभव करते हैं।**

उस समय परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं, जिनमें राष्ट्रभक्ति का उदित होना स्वाभाविक था। राष्ट्रीय जनजागरण के लिए डॉ. साहब ने मातृभूमि के लिए अटूट प्रेम प्रदर्शित किया। उन्होंने शासित वर्ग में गौरव एवं स्वत्व की भावना उत्पन्न की और लोगों में हीनता की भावना समाप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को गति प्रदान करने के लिए अतीत दर्शन से गौरव गर्वित वातावरण का निर्माण किया।

कहना नहीं होगा कि तत्कालीन समाज अनेक दुर्गुणों से ग्रस्त था।

डॉ. साहब ने रूढ़ियों, अँधविश्वासों और बाह्याडंबरों की तीखी आलोचना की। उन्होंने कर्मकांडों का प्रतिवाद किया तथा धार्मिक महंतों पर कड़े प्रहार किए और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया। डॉ. साहब का मानना था कि आर्थिक शोषण का मुख्य आधार पूँजीवाद है, जिससे पूँजी कुछ लोगों के हाथों में ही सिमटकर रह जाती है। राष्ट्रीय विकास के लिए पूँजी पर नियंत्रण अति आवश्यक है। यदि ऐसा न हुआ तो आर्थिक वैषम्य उत्पन्न हो जाता है। डॉ. साहब के इस विचार पर जब हम आज गौर करते हैं तो 'निराला' की व्यंग्यात्मक शैली में संकेत कर रहीं कुकुरमुत्ता की निम्नलिखित पंक्तियाँ हमें याद आ जाती हैं-

"अबे, सुन बे, गुलाब! भूल मत, जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर इतराता है कैपटलिस्ट।"

युग की समस्याओं-विषमताओं के समक्ष जन-मानस की दबी-सहमी, सुषुप्त चेतना को मानव-मूल्यों एवं सुदृढ़ राष्ट्र के प्रति उत्प्रेरित एवं जागृत करना डॉ. मोहन सिंह जी का सदैव प्रयास रहा। आज जहाँ व्यक्ति आदर्शवादी एवं स्वार्थी बनता जा रहा है, वहीं डॉ. साहब यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े नवयुगीन भाव का आह्वान करते थे, यह नवसर्जन एवं समाज-परिवर्तन उनके सरीखे मानव के अथक प्रयास एवं चेतनामूलक संघर्ष से ही संभव हो सकता था। उन्हें अपनी मातृभूमि स्वर्ग जैसी प्यारी लगती थी। जिस माटी को वीर सपूत शहीद भगत सिंह ने अपने खून से सींचा, राणा और शिवाजी ने तलवारों से सँवारा, जहाँ गाँधी, नेहरू और सरदार पटेल ने अमन के बीज बोए, वहीं उसी हिंदुस्तानी माटी में पले-बढ़े डॉ. मोहन सिंह जैसी हस्ती ने भी नई क्रांति के निर्माण का आह्वान किया। ऐसे वक्त हमें याद आती हैं डॉ. जय सिंह 'व्यथित' की कृति "युग-चिंतन" की कुछ पंक्तियाँ-

"उस माटी की नई फसल का आओ हम सम्मान करें।
उस माटी के कण-कण से फिर नई क्रांति निर्माण करें।।"

डॉ. साहब की मान्यता थी कि 'जिस प्रकार विश्व चेतना के आधार पर ही हम सच्चे रूप में विश्वबंधुत्व की भावना को जाग्रत कर सकते हैं, उसी प्रकार सच्ची राष्ट्र चेतना की नींव पर ही हम राष्ट्रीय भवन

का निर्माण कर सकते हैं। जबतक हमारी राष्ट्र-चेतना सुषुप्ति की अवस्था छोड़कर प्रबुद्ध और सक्रिय नहीं होती, तब तक हम कोई भी व्यवस्था चाहे वह अर्थ या भाषा की हो, या समाज की, राष्ट्रीय स्तर पर कर ही नहीं सकते। यदि करते हैं, तो हम असफल रहेंगे ही, इसमें सोचने-समझने की गुँजाइश नहीं के बराबर है।'

यह इस देश की क्रूर विडंबना ही है कि भारत की आजादी के 58 वें वर्ष में यहाँ ऐसे व्यक्तियों का अभाव हो जो अपनी सूझबूझ एवं दृढ़ निश्चय के साथ देश व समाज को समृद्ध भविष्य की ओर ले जाए, जिसका सपना हमें स्वतंत्रता दिलानेवाले एवं नैतिक मूल्यों के प्रति पूर्ण प्रतिबद्ध डॉ. मोहन सिंह ने देखा था। आज देश में भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, सांप्रदायिकता एवं जातीयता का बोलबाला है; और हमारा सार्वजनिक जीवन अधोगति के निम्नतम स्तर को छू रहा है।

अशांति और विक्षोभ के इस वातावरण में सभ्यता और संस्कृति की पाँच हजार वर्ष की निरंतरतावाले इस देश को आज अपने ऐसे महापुरुषों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है, जिन्होंने भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराने के लिये निःस्वार्थ भाव से अपने जीवन और प्राणों की बलि दी। ऐसे ही स्वतंत्रता सेनानियों ने देश की जनता को महान लक्ष्यों तक पहुँचने का अहसास कराया था।

राष्ट्रीयता ऐसी भावना है जिसका संबंध मानव के अंतःकरण एवं भीतरी चेतना से होता है। 'राष्ट्रीयता' शब्द मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में से एक प्रमुख वृत्ति है जिसके कारण मानव अपने राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम एवं अभिन्न लगाव रखता है और वह अपने राष्ट्र को सदा समृद्ध एवं उन्नतिशील देखना चाहता है। इसी भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति अपने राष्ट्रहित एवं समग्र समाज-कल्याण के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देता है और इस त्याग एवं बलिदान में एक सच्चा देशभक्त अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है। भारत माता के इन्हीं सच्चे सपूतों में से एक देशभक्त पैदा हुए जिनका नाम मोहन सिंह है।

जिस तरह हिमगिरि के सुदृढ़ उतंग शिखर वायु, वर्षा और हिम के झंझावातों में अडिग रहकर पावन गंगा की धारा को गतिशील बनाए रखते

हैं, उसी तरह डॉ. मोहन सिंह भी लघुता-बोध तथा अलगाववादी चेतना के युग में मानवीय चरित्रों के प्रतिमान बने और उन्होंने राष्ट्रीय भावधारा को गति प्रदान किया। प्राय: देखा गया है कि उम्र के साथ-साथ व्यक्ति की कार्यक्षमता में ठहराव आ जाता है, किंतु डॉ. साहब इसके अपवाद सिद्ध हुए। कारण कि प्रारंभ में वे जितने गतिशील थे उतने ही अपने जीवन के सत्तर तथा अस्सी के दशक में भी रहे।

भूमंडलीकरण पर डॉ. साहब के विचार :

सरकार की उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण की नीति के सवाल पर राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत डॉ. मोहन सिंह जी का कहना था कि मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों के अनुरूप उदारीकरण, भूमंडलीकरण निजीकरण तथा ढाँचागत सुधार के कार्यक्रमों के तहत भारत जैसे विकासशील देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा बाजार व्यवस्था का जो प्रभुत्त्व लादा जा रहा है उसके खिलाफ जनांदोलन व जनसंघर्ष को तीव्र करने की आवश्यकता है। कारण कि इन अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थानों के निर्देशों में अंतर्निहित शर्तों से देश की राजनीतिक स्वतंत्रता और संप्रभुता की समाप्ति का खतरा नजर आने लगा है। भारत साल-दर-साल अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थानों के कर्ज के बोझ तले दबा जा रहा है और विकसित देशों के उत्पाद की खपत भारतीय बाजार में होने से यहाँ बेरोजगारी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, क्योंकि विश्व बैंक की कार्यशैली इस तरह की है कि यह बैंक भारत जै पिछड़े हुए देशों को आर्थिक विकास में सहयोग देने की बजाय उन्हें बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बाजार बनाने की भूमिका निभा रहा है। आश्चर्य तो तब होता है जब इसका अनुमान लगाए बगैर हमारे यहाँ के अर्थशास्त्री व बुद्धिजीवी अपने "अगर-मगर" और "लेकिन" के साथ अकादमिक ढंग से इस बात को स्वीकार्य बनाने के प्रयासों में लगे हैं कि इन अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों की सहायता से भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार हो सकता है तथा हम आत्मनिर्भर हो सकते हैं। सच तो यह है कि अब भूमंडलीकरण के खिलाफ विकसित देशों में भी जनांदोलन की लहर देखने को मिल रही है, वहाँ भी

लंबी हड़तालें हो रही हैं। वहाँ के शासक वर्ग के लिए उन्हें नियंत्रित करना मुश्किल हो रहा है। इसके चलते साम्राज्यवादी व्यवस्था की बुनियाद पर गहरा आघात लगा है। फलतः साम्राज्यवादी खेमा अपने इस संकट से उबरने के लिए पिछड़े हुए देशों में आतंकवाद, अपराध, सांप्रदायिकता तथा फासीवादी प्रवृतियों को बढ़ावा देते हुए मेहनतकश तबकों और जनसामान्य को भयभीत करने एवं उनकी एकता को तोड़ने की कोशिशों में लगा है। भारत भी इसका शिकार बुरी तरह हो चुका है। इसलिए डॉ. साहब इन खतरों से निरंतर लोगों को सावधान करते नजर आए और भूमंडलीकरण, उदारीकरण का विरोध, विदेशी कर्जों की अदायगी पर रोक, बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर नियंत्रण एवं उनके उत्पाद का बहिष्कार, देशी उद्यमों, लघु उद्योगों व हस्तशिल्प का विकास और भूमि सुधार कानूनों को तेजी व सख्ती से लागू करने की बात सदैव कहते रहे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एक लंबे अरसे तक भारत औपनिवेशिक दासता से बँधे होने के कारण निरंतर शोषण की प्रक्रिया से गुजरा है। अपनी आर्थिक विपन्नता और संसाधनहीनता के चलते प्रौद्योगिकी की उपलब्धता के लिए इस देश को अमेरिका व अन्य विकसित यूरोपीय देशों पर निर्भर करना पड़ रहा है जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज का हर अंग प्रौद्योगिकी से प्रभावित हुआ है और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से भारतीय समाज के इतिहास में एक नए युग का प्रवर्तन प्रारंभ हुआ है। लेकिन इस प्रसंग में यह जरूर देखा-समझा जाना चाहिए कि इस युग-प्रवर्तन की असल तस्वीर क्या है! क्या प्रौद्योगिकी का यह अभूतपूर्व विकास भारतीय समाज के लिए हितकर है? और है तो समाज के किस वर्ग के लिए? डॉ. मोहन सिंह इस सवाल के जवाब में कहते थे कि प्रौद्योगिकी के जरिए तमाम विकास के तमाम लंबे-चौड़े दावों के बावजूद आज भी एक ओर भारतीय समाज का एक बड़ा तबका गरीबी और असहाय स्थितियों में जी रहा है, तो दूसरी ओर अमेरिका तथा यूरोप के अन्य विकसित देश आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल अपने हितों के लिए कर रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कार्पोरेट सेक्टर को नवीनतम प्रौद्योगिकी से लैस करते हुए उनकी कार्यक्षमता में इजाफा करके अकूत धनराशि एकत्र

की जा रही है। साथ ही, अपने यहाँ की घटिया और पुरानी प्रौद्योगिकी भारत के मत्थे मढ़कर साम्राज्यवादी देशों पर हमारी निर्भरता बढ़ायी जा रही है। इनकी यह परिणति क्या हमें यह सोचने के लिए बाध्य नहीं करती कि अपनी विशिष्ट परिवेशगत विभिन्नताओं, सामाजिक आवश्यकताओं तथा आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि की अनदेखी कर विकास का पश्चिमी मॉडल अपनाने का परिणाम आर्थिक पराधीनता ही होता है। यही नहीं प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के परिणामों से खुशहाली की कोई समान स्थिति यहाँ नहीं बन पाई है। भारत की बहुसंख्यक जनता आज भी पर्याप्त भोजन, पेयजल और आवास के संकट से ग्रस्त है। इस समाज को किसी भी अर्थ में बेहतर समाज नहीं कहा जा सकता है। हाँ, इतना जरूर है कि इस प्रौद्योगिकी के विकास का लाभ इस देश के मुट्ठी भर बड़े पूँजीपतियों और उनके प्रतिनिधि शासक वर्ग को जरूर मिला है, क्योंकि प्रौद्योगिकी के विकास और इस्तेमाल का प्रश्न अनिवार्यतः राजसत्ता के चरित्र से जुड़ा हुआ है। पिछले सत्तावन-अट्ठावन वर्षों से भारत का शासक वर्ग, चाहे जिस राजनीतिक दल या गठबंधन की सरकार का रहा हो, पूंजीपतियों तथा अमीर वर्गों के हितों के अनुरूप तथाकथित विकास योजनाएँ बनाता रहा है। भारी उद्योगों के जरिए रोजगार के अवसरों को चंद बड़े शहरों तक समेट लेने से गाँवों-कस्बों में कृषि और लघु उद्योग नष्ट हो गए हैं। हजारों-लाखों लोग रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इससे शहरों में यातायात, आवास और प्रदूषण की समस्याएँ बढ़ी हैं, अपराध बढ़ रहे हैं, आबादी के घनत्व के बोझ से शहरों में झुग्गी-झोपड़ियों का विस्तार होता जा रहा है जिनमें लोग नारकीय जीवन जी रहे हैं। इससे राजसत्ता के जनविरोधी चरित्र का साफ-साफ पता चलता है। यही कारण है कि इस देश के अधिकतर तबकों में राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास होता जा रहा है। राष्ट्र-चेतना के लोप होने से विकास की गति पर उसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। डॉ. मोहन सिंह ने इस संकट का संकेत सभा-संगोष्ठी में सदैव देते हुए इससे सावधान रहने पर बल दिया।

अब वे हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनके अवदान को देखते हुए उनकी जलायी वैचारिकता की मशाल को बुझने नहीं देने का दायित्व उनसे

जुड़े लोगों पर है। अगर उनकी जलायी मशाल बुझ गयी तो भविष्य हमें माफ नहीं करनेवाला।

गाँधी-विचारों के प्रबल समर्थकः

गाँधीजी के विचारों और सत्याग्रह आंदोलन का प्रभाव सारे देश पर पड़ा। किसी भी राज्य का वासी गाँधीजी के प्रभाव को अस्वीकार नहीं कर सकता था। भारतवासियों पर उनका प्रभाव इतना पड़ा कि जनता की भावनाओं को स्वतंत्रता की ओर मोड़ने में गाँधीजी की विचारधारा ने प्रश्रय दिया और बिहार के मोहन बाबू ने भी गाँधीजी के सिद्धांतों को अपने कार्यकलाप का आधार बनाकर उन्हें जीवन में व्यवहारिक रूप दिया और गाँधीजी के विभिन्न आंदोलनों और सत्याग्रह अभियानों का एक हिस्सा बनकर नव-जागरण के प्रति अपनी जागरूकता प्रदर्शित की।

गुलामी की जंजीरों से मुक्ति का आह्वान गाँधीजी की वह प्रेरणा थी जिसने अनेक देशवासियों को क्रांति की ओर उन्मुख करने के लिये कटिबद्ध किया। स्वाधीनता के लिये अपने प्राणों को उत्सर्ग करने की भावना जन-जन में बलवती हो उठी। स्वदेश और स्वदेशी के प्रति प्रेम और धार्मिक कट्टरता का विरोध गाँधीजी का वह मूल-मंत्र था जिसे प्रबुद्धजनों ने अपनाया और प्रचारित किया। स्वतंत्रता आंदोलन में कूद-पड़ने की भावना के साथ हिंसा का विरोध एक ऐसा सत्याग्रह था जिसकी ओर देश के बुद्धिजीवी ही नहीं तमाम विश्व के बुद्धिजीवियों का ध्यान आकृष्ट हुआ। गाँधीजी के सत्प्रयासों का ही यह परिणाम था कि शताब्दियों से सोया हुआ भारत अपनी तंद्रा त्यागकर नवजागरण के युग में प्रवेश कर सका। रॉलेट एक्ट के विरोध में चलाया गया चंपारण और बारडोली का सत्याग्रह, साइमन कमीशन का विरोध और नमक सत्याग्रह तथा सन् ब्यालीस का आंदोलन ऐसे सक्रिय कार्यक्रम थे कि उन्होंने देश में एक नई राजनीतिक चेतना पैदा कर दी।

महात्मा गाँधी का मूलाधार सत्याग्रह है। सत्याग्रह के मूल में गाँधी के जीवन की तपश्चर्या की गूढ़ कथा है। गाँधीवाद के दो महान कीर्तिस्तंभ

हैं-सत्य और अहिंसा। हृदय-परिवर्तन की चमत्कार-पूर्ण प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है सत्याग्रह। सत्याग्रह की मान्यता है कि मानव स्वभाव स्वत: शुभ है और परिस्थिति के आघात-प्रत्याघात के कारण ही वह अशुभ हो जाता है। सत्य के आग्रह में विरोधी द्वारा पहुँचाई गई प्रत्येक प्रकार की पीड़ा को सहना और उसके उद्धार की सच्चे दिल से प्रार्थना निहित है। इसी प्रकार पूर्ण निष्काम भाव से वैर त्याग कर चराचर जगत से प्रेम करना ही अहिंसा है। अहिंसा सत्य का ही दूसरा रूप है। वस्तुत: अहिंसा सत्य का भाव पक्ष है। अहिंसा का अर्थ प्रेम ही है, किंतु यह प्रेम स्वार्थ और मोह आदि से सर्वदा मुक्त होता है।

अहिंसा का महत्त्व भारतीय दर्शन और आचारशास्त्र में अति प्राचीनकाल से प्रतिपादित होता आया है। उपनिषद, दर्शन, गीता और महाभारत आदि ग्रंथों में स्थान-स्थान पर सत्य और अहिंसा के महत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है। पतंजलि ने स्पष्ट लिखा है-अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सनिधौ वैरत्याग:। अर्थात अहिंसा की प्रतिष्ठा से वैरभाव का लोप होता है।

सत्याग्रह की प्रेरणा के लिए 'आत्मबल' का होना नितांत आवश्यक है। गाँधी जी के पास तो था-उच्च आत्मबल एवं नैतिक उच्च आत्मबल के कारण उनके विचार एवं भावनाएँ मृत्यु के पार पहुँच चुकी थी, तभी तो कवि मैथिलीशरण गुप्त का स्वर मुखरित होता है..........

'आत्मबल की प्रेरणा-गीता
बाँधे थे सौ शस्त्र लुटेरे
और निहत्थे थे हम लोग,
तू 'नैन छिदंति' मंत्र सा
जमा, भगा सारा भय रोग।'

डॉ. मोहन सिंह गाँधी के इन विचारों के प्रबल समर्थक थे और उनके रचनात्मक कार्यक्रमों में गहरी रूचि रखते थे। खादी ग्रामोद्योग, गो-सेवा, शराबबंदी आदि पर आपके प्रेरक विचार गोष्ठियों में देशवासियों को सुनने को मिलते थे। वे बराबर कहा करते थे कि भारत गाँवों का देश है, गाँव आर्थिक दृष्टि से मजबूत होंगे तभी देश मजबूत होगा। खादी

संस्थानों से आप सीधे रूप से तो नहीं जुड़े थे फिर भी खादी संस्थाओं के बहुत लोगों से डॉ. मोहन सिंह जी का निकटता का परिचय एवं गहरा संबंध रहा था। वे गाँधी जी के मार्ग के पूर्ण अनुयायी, सौम्य-स्वभावी थे। आपने अपने जीवन में कभी भी असत्य पथ का आश्रय नहीं लिया। आपने स्वतंत्रता-संग्राम में कारागार की यंत्रणा का भी अनुभव किया। फिर भी सन्मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। देश की प्रदूषित राजनीति में आपका मन नहीं रमा। अत: उससे दूर रहकर आप चिकित्सा-शिक्षण में ही प्रवृत्त हुए, किंतु महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से अनुप्राणित-प्रभावित होकर उन्होंने सांस्कृतिक एवं सामाजिक संचरण में समन्वय स्थापित करने का प्रयास जारी रखा।

डॉ. मोहन सिंह के जीवन-क्रम की गतिविधि के अवलोकन करने के पश्चात् यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि कठोर परिश्रम, सतत् अध्यवसाय की, गाँधीवादी जीवन दृष्टि से डॉ. साहब के सादा जीवन तथा उच्च विचार-संपन्न व्यक्तित्व का गठन हुआ। वह विषम परिस्थितियों से टकराए, उनको पैरों से कुचला गया, आगे बढ़े, साथ ही औरों के लिए उत्कर्ष का पथ प्रशस्त किया। मैंने डॉ. साहब को किसी को निराश करते नहीं देखा। वह आशुतोष थे और सबको सहारा देने के लिए आगे बढ़ते रहे।

गाँधी जी के अहिंसा के सिद्धांत को डॉ. साहब संपूर्ण जगत के शांत एवं सद्व्रत संकुल जीवन का प्रतीक मानते थे और सर्वोदय संकल्प को इसी सिद्धांत का अभिन्न अंग ठहराता है। गाँधी जी की दृष्टि में, ऐसे राज्य की परिकल्पना थी जो लोगों के लिए कष्टकर और अहितकर न हो। डॉ. साहब उन्हीं के अडिग एवं अविचलित पथ के पथिक थे।

आज के दौर में जब हम गाँधी के विचारों एवं आदर्शों पर एक नजर दौड़ाते हैं तो पाते हैं कि सत्ताधारियों तथा राजनीतिक दलों ने उनके आदर्शों से अपने को विमुख किया है। गाँधीजी को राष्ट्रपिता कहकर उनके चित्रों, मूर्तियों आदि की पूजा तो प्रारंभ हुयी, लेकिन प्रचलित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ उन्होंने विकेंद्रीत अहिंसक समाज का

जो बुनियादी विचार दिया था उसको परदे के पीछे ढकेल दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि नयी पीढ़ी गाँधी विचार-दर्शन के क्रांतिकारी पहलू से परिचित नहीं हो पायी। आजाद भारत से गाँधी ने क्या आशा रखी थी और उससे उनकी क्या अपेक्षा थी, वह विस्मृति के गाल में चला गया। पिछले कई वर्षों से वैश्वीकरण के खिलाफ दुनिया के कई विकासशील देशों में जो आवाजें उठ रही हैं उससे एक बार पुन: गाँधीजी के विचारों का महत्त्व बढ़ा है, क्योंकि गाँधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्तरंजित मार्ग पर नहीं है, जिस पर चलते-चलते पश्चिम अब स्वयं थक चुका है, अपितु उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही निर्मित होनेवाला है।

हम सब इस बात से पूर्णत: अवगत हैं कि बापू का सपना था कि ग्राम स्वराज्य एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र हो जिसमें हमारी बुनियादी जरूरतें स्वावलंबन के आधार पर खुद पूरी की जा सकें। खादी के अतिरिक्त हमारे गाँवों में कुटीर उद्योगों को स्थापित किया जाये, ताकि प्रत्येक को अपने जीवन निर्वाह के लिये रोजगार मिल सके। इसके ठीक विपरीत आर्थिक सुधार के वर्तमान पैरोकारों ने बापू की बात भूलकर अपने देश को दुनिया का बाजार बना दिया जिसका दुष्परिणाम इस देश के लोग भुगतने को विवश हो रहे हैं। बेरोजगारी बढ़ी है क्योंकि पिछले दस वर्षों में आठ लाख से अधिक उद्योग धँधे बंद हो गये हैं।

गलत नीतियों के अनुसरण-अनुकरण के कारण देश आर्थिक गुलामी की ओर बढ़ रहा है। हमारी पर-निर्भरता बढ़ रही है। कुटीर-उद्योग अँग्रेजी-शासन काल में ही नष्ट किये जा रहे थे। जब अपनी सरकार आयी, पश्चिम के अंधानुकरण से रही-सही आशा पर भी पानी फिरता नजर आ रहा है। देश आर्थिकतया गुलाम हो चुका। इस्ट इंडिया कंपनी ने व्यापार के बहाने अपना प्रभुत्व प्रभाव बढ़ाया था, सरकार इतिहास के उस पृष्ठ को शायद बंद कर चुकी है।

देश आजाद तो हुआ किंतु बापू और उनके अनुयायियों ने जिस सुराज की कल्पना की थी, वह साकार नहीं हो पायी। अब हमारे बीच

मोहन बाबू जैसे गाँधी जी के सच्चे अनुयायी एक-एक कर उठते जा रहे हैं। सत्ता के लिए गाँधी का नाम तो भुनाया जा रहा है किंतु सरकार गाँधी के प्रौढ़ और सुविचारित सिद्धांतों की अवहेलना कर रही है। देश का भविष्य, इस स्थिति में तमसाछन्न प्रतीत होता है।

भारतीयता के संरक्षक :

भारत अनेक भाषा, धर्म तथा जातियों का देश है। यदा-कदा इस देश की भाषाओं, धर्मों तथा जातियों में पारस्परिक टकराव की स्थिति भी उत्पन्न होती है। लेकिन वह इस देश की स्थाई प्रकृति नहीं है अथवा यों कहा जाए कि वह भारतीयता का वास्तविक रूप नहीं है। इसका वास्तविक रूप है, परस्पर सामंजस्य, एकता, आत्मीयता और समन्वय। इसका सर्वाधिक सुंदर रूप बाहरी शक्ति के आक्रमण, चाहे वह चीन का हो या पाकिस्तान के समय कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक राष्ट्रीयता का संयत और संतुलित उन्माद देखने को मिला था। डॉ. मोहन सिंह के उस वक्त के कार्यकलापों द्वारा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रतिबद्धता समाज व देश की धमनियों में उष्ण रक्त का संचार हो पायी थी। डॉ. साहब का देशानुराग का परिचय उनकी इस अभिव्यक्ति से मिलता है जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत की अहिंसक आत्मशक्ति शस्त्रों में नहीं, बल्कि वह आत्मा के बल में प्राप्त होती है। डॉ. साहब की यही प्रवृति उनको भारतीयता का नायक बनाती है। उनका त्रिशवास था कि भारत निज धर्म की रक्षा हेतु उग्र रूप भी धारण कर सकता है, किंतु अपने आत्मबल पर शत्रु का नैतिक बल भी क्षीण कर सकता है। ऐसे वक्त हमें स्मरण हो आती है उत्तर-दक्षिण के साहित्य सेतु डॉ.एन. चन्द्रशेखरन नायर क 'हिमालय गरज रहा है' की निम्न पक्तियाँ--

'देखें इस पवित्र शांत देश
निज धर्म की चिर-स्थापना की
तपस्या में क्या न उग्र रूप
जग कर पल में करता धारण।'

भारत की महानता इसमें है कि वह शस्त्र का नैतिक आधार लेकर पंचशील के सिद्धांत से संसार को जीत लेता है। मसलन शस्त्र-साधना

उसका लक्ष्य नहीं है, वरन् इंसानियत की रक्षा की साधना है। यदा-कदा, व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जबकि शांति, सुरक्षा और स्वाधीनता की रक्षा के लिए शस्त्रों का प्रयोग करना पड़ता है। भारत के इतिहास में ऐसे दो अवसर आ चुके हैं। पाकिस्तान तथा चीन के युद्ध में, भारत ने अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए शस्त्रों का आश्रय लिया था। ये दोनों घटनाएँ देश की रागात्मक एकता की प्रतीक हैं। डॉ. साहब ने इस आशय की अभिव्यक्ति अपने शुभेच्छुओं के बीच की थी। उनका कहना था कि अहिंसा और शांति हमारी घोषित नीति है, पर राष्ट्रीय आवश्यकता के समय, संग्राम भी हमारा आपद-धर्म बन जाता है। यही हमारा आदर्श है और इसी की सजगता के साथ निर्वाह भारतीयता का संपोषण है। डॉ. साहब सदैव मानते रहे कि स्वाभिमान की रक्षा भारतीय दर्शन का एक निकष है। उन्हें एक ओर तो भारतीय आदर्शवादिता पर गर्व-मिश्रित हर्ष का अनुभव होता था, तो दूसरी ओर आज के मानव की संकीर्ण मनोवृति पर व्यथा की अनुभूति होती थी। किंतु वह अलगाव अथवा मृत्यु-बोध से आक्रांत नहीं थे, वह पराभव को, मानवीय चेतना के ह्रास को उत्कर्ष में परिणत करने के लिए सजग थे।

अनेक लोग अपनी प्रगति पर हर्षित और पराभव पर व्यथित होते हैं, यह भारतीयता नहीं है, किंतु हमारे डॉ. मोहन सिंह जगत की अवनति पर व्यथित और इसकी प्रगति पर उल्लसित होते थे। भारतीयता का प्रतीक यही दृष्टि है और वह डॉ. साहब के पास प्रचुर मात्रा में विद्यमान था।

भारतीय दृष्टि पेट भर कर मस्त सोने अथवा जीने को स्वानवृति मानती है। जीवन, उसकी दृष्टि में अन्यों को जीवन देने में निहित रहता है। डॉ. साहब स्वयं को संकट में डालकर भी, दूसरों क जीवन की रक्षा करने में विश्वास करते थे और उसे ही श्रेष्ठ मानते थे। सच कहा जाए तो त्याग और विश्वबंधुत्व की स्थिति पर पहुँचा ऐसा ही लौकिक पुरुष देवत्व की कोटि पर पहुँच जाता है। मानव के व्यवहार में देवता के गुणों का आचरण भारतीयता का अंग है। डॉ. साहब इसी की साधना में लीन रहते थे। किंतु उन्हें देश में पनपते भ्रष्टाचार पर क्षोभ था। निरंतर बढ़ती हुई विसंगतियों पर व्यथा भी और इसके निदान के लिए भारतीय मानस की उदासीनता पर हमेशा दुख प्रकट करते थे। देशवासियों के आचरण-मूलक पतन और उसके विनाश की अर्चना दोनों में ही डॉ. साहब की भारतीयता निहित थी।

एक भारतीय के रूप में डॉ. साहब ढोंग, अनाचार, आडंबर, संहार, युद्ध सामाजिक तथा आत्म-अलगाव का विरोध करते थे। वह देश और देश के सांस्कृतिक आदर्शों के साथ प्रतिबद्ध थे। उनको भारत की संवेदनशीलता, आतिथ्य-भावना, अहिंसात्मक-दृष्टि और शांति कामना पर गर्व था। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व भारतीयता का शाब्दिक संशलिष्ट बिंब प्रस्तुत करने में सक्षम था।

आज राष्ट्र व्यथा के दौर से गुजर रहा है। राष्ट्रीय एकता का सवाल तीखा है। भौतिक साधन-संपत्ति में प्रगति हुई है लेकिन उन्नति की राह अँधियारे मोड़ों में फिर खो गई है। हिंसा को सामाजिक मान्यता मिलना आम बात होती जा रही है। असुरक्षा बोध ने स्थिरता का गला धर दबोचा है। हमारे देश के समक्ष इतनी विचित्र कुंठा भरी स्थितियाँ इसके पूर्व शायद कभी नहीं आई थीं। ऐसी विषम और विकट परिस्थितियों में जिनकी नस-नाड़ियों में बहनेवाला खून का सुखद, आत्मप्रत्ययी और सुमधुर परिचय मिला वे थे डॉ. मोहन सिंह, जिन्हें प्रबल काल की उन्नत शालीनता भी मिटा नहीं सकी और वे उन्नत भाल लिए भारत माँ की असमर्थता के नित्य नए परिणामों से भारतीय जनता को तेज और ओज से उच्छवासित करते रहे। कालप्रवाह के बलशाली थपेड़े भी जिन्हें थका नहीं सके-ऐसे में डॉ. साहब आज भी प्रासंगिक हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और अच्छे जीवन स्तर के क्षेत्र में बिहार राज्य देश की सबसे पिछली कतार में खड़ा है जिसका मुख्य कारण है कि आजादी के 58 वर्षों बाद भी यहाँ के शासन-प्रशासन पर परंपरावादी निहित स्वार्थी तत्त्वों का वर्चस्व बना हुआ है। इसलिए मौलिक परिवर्तन करने का गंभीरता के साथ प्रयास भी नहीं हो पा रहा है। फलस्वरूप विकास का लाभ गरीब आदमी को जितना मिलना चाहिए, नहीं मिल पा रहा है। उसकी तरफ रोटी का एक टुकड़ा फेंककर सत्ता का वास्तविक लाभ आज भी वही निहित स्वार्थी वर्ग और उच्चवर्गीय अमीर उठा रहा है। हर जाति का गरीब और निर्धन उसके शोषण और तिकड़म का शिकार हो रहा है जिसके चलते सामाजिक परिवर्तन का आंदोलन शक्तिशाली नहीं बन पा रहा है। सामाजिक शक्तियों के बँटवारे का लाभ उठाकर सामाजिक न्याय की दुश्मन ताकतें 'बाँटो और राज करो' के अपने पुराने हथकंडे को अपनाकर अपना उल्लू सीधा कर रही है और राष्ट्र कमजोर हो रहा है। सामाजिक न्याय के हिमायती डॉ. मोहन सिंह इसके

लिए एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन सामाजिक न्याय की पक्षधर शक्तियों की मात्र जरूरत महसूस करते थे।

सर्वोदय की भावना से आप्लावित:

सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका उत्कर्ष, सबका विकास। सर्वोदय का आदर्श है अद्वैत और उसकी नीति है समन्वय। मानवकृत विषमता का वह निराकरण करना चाहता है और प्राकृतिक विषमता को कम करना चाहता है। जीवमात्र के लिए, प्राणीमात्र के लिए समादर। प्रत्येक के प्रति सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। डॉ. मोहन सिंह सर्वोदय की इसी भावना से आप्लावित थे। उनका कहना था कि जीवमात्र के लिए सहानुभूति जब जीवन में प्रवाहित होता है, तो सर्वोदय की लता में सुरभिपूर्ण सुमन खिल उठते हैं।

समाजगत विषमताओं का एक बड़ा कारण आर्थिक अव्यवस्था है। इस दृष्टिकोण से डॉ. साहब का अभिप्राय था कि सर्वोदय का महल आर्थिक समानता की नींव पर ही खड़ा हो सकता है। सर्वोदय भावना इस देश के लिए एकदम नई भावना नहीं है--

"सर्वापदा मंतकरं निरंतम।
सर्वोदयं तीर्थमिदं तदैवे।।"

जैनाचार्य समंतभद्र की उक्त वाणी में भारतीय ऋषियों के इस दिशा में चिंतन का आभास मिलता है। सर्वोदय जीवन तभी संभव है जबकि मानव का नैतिक धरातल सामाजिक और अध्यात्म मूलक हो। मानव चाहता है कि उसका जीवित रहना नितांत आवश्यक है, क्योंकि उसका समकालीन भाई संकट में है। उसके संकट-निवारण की चेष्टा करना युगधर्म है। इस प्रकार परस्पर विश्वास का, प्रेममय व्यवहार का तथा अहिंसात्मक जीवन स्थापित करना सर्वोदय का चरम लक्ष्य है।

आधुनिक मनुष्य अपनी जटिल एवं स्वार्थमय सामाजिक विषमताओं की वजह से जीवन से संत्रस्त है। हजारों वर्षों की सामंतवादी और पूंजीवादी सभ्यता का वह अभी भी शिकार है। महाजनी सभ्यता की धनलिप्सा ने उसे

मोहांध कर रखा है। साथ ही यांत्रिक गुणों की शक्ति से वंचित कर दिया है। उसके बोध-मंडल पर एक तरह की भ्रामक जटिलता ने अधिकार स्थापित कर लिया है। इसी को देखते हुए डॉ. साहब कहते थे कि अगर संसार में मानवता लुप्त हो रही है या शांति के अस्तित्व में बाधा उपस्थित हो रही है तो इस सत्यानाश से मानवता को बचाने का उपाय ढूँढ़ लेना चाहिए। वे महसूस करते थे कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक पतन वैयक्तिक और सामूहिक दोनों तलों पर दृष्टिगत हो रहा है जिसके कारण विश्वनाश की आशंकाएँ भी दिनोदिन बढ़ती जा रही हैं। इस हालत में मानव मात्र के बचाव के लिए एक महान आदर्श अपेक्षित है जो शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सके। इसके लिए उनकी नजर में मात्र सर्वोदय एक ऐसा आदर्श है जो व्यापक मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा कर सकता है, क्योंकि अन्य जितने भी सिद्धांत व तत्त्व-दर्शन प्रतिपादित हुए हैं वे सब एकांगी सिद्ध हुए हैं। वे समाज के सभी लोगों का कल्याण नहीं चाहते। सर्वोदय वर्ग-हीन, शोषण-हीन सामूहिक क्रांति लाना चाहता है तथा उसका आधार अहिंसा है।

डॉ. सिंह मानते थे कि चाहे समाजशास्त्र हो, चाहे अर्थनीति, आज के वैज्ञानिक युग में सभी बातों का विज्ञान के निकर्ष पर चढ़ाकर मूल्य-निर्धारण किया जाता है। तत्त्व-दर्शन भी वैज्ञानिक हो, तभी मान्य हो सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि सर्वोदय तत्त्व-दर्शन पूर्णतः वैज्ञानिक है। जहाँ मूल्य निर्धारण का मापदंड अहिंसा हो, वहाँ अवांछित निराकरण-योग्य तत्त्वों को कभी मान्यता प्राप्त नहीं होगी, वहाँ हर बात में मानसिक संतुलन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण काम करता है। इसलिए सर्वोदय से बढ़कर परम स्वीकार्य और आदरणीय जीवन-दर्शन और कोई नहीं हो सकता, क्योंकि आज धन, सत्ता और शस्त्र से शाश्वत शांति की स्थापना संभव नहीं और इन उपकरणों पर से चिंतकों व विचारकों की भी आस्था उठ रही है। विज्ञान भी इस दिशा में निर्बल दिखता है। जहाँ भौतिक समृद्धि में विज्ञान सहायक है वहाँ उस समृद्धि से जनित नैतिक पतन का निराकरण करने में वह असमर्थ है। अन्याय से, शोषण से, बेईमानी से इक्टठी की गयी कमाई से भौतिक सुख भले ही बटोर लिए जाएँ उनसे आत्मिक सुख की उपलब्धि

कतई नहीं हो सकती। आत्मिक आनंद तथा सुख तो दूसरों की सहायता करने में ही निहित है। यह तभी संभव है जब हम निज स्वार्थ और संकीर्णता से ऊपर उठकर उदारता, सद्भाव, स्नेह, सहनशीलता और सेवा जैसे मानवीय अलंकरणों को अंगीकार करें। यही एक सभ्य समाज की आवश्यकता है।

डॉ. मोहन सिंह के व्यक्तित्व की यही विशेषता थी कि उनमें सहयोग की भावना कूट-कूटकर भरी थी और सबके सहयोग से तमाम सामाजिक समस्याओं का निदान निकालना चाहते थे, क्योंकि उनका मानना था कि रचनात्मक कार्यों की आशातीत सफलता के पीछे सामूहिकता का ही हाथ होता है। वैसे यह सिद्धांत भी है कि जब आप दूसरों के काम आएंगे, तो दूसरे भी आपके काम आएंगे! इसलिए जरूरत इस बात की है कि सहयोग की भावना को सर्वप्रथम अपने स्वभाव का अंग बनाया जाए और इसके बाद अपने परिवार तथा मित्रों में यह भावना विकसित की जाए।

उक्त सोच को अपने में पल्लवित कर मोहन बाबू ने संपर्क में आए लोगों पर अपना विशेष प्रभाव डाला। उसी का परिणाम है कि उनके निधनोपरांत उनके इष्ट-मित्र तथा उनका पूरा परिवार सही पथ के पथिक बन पाए।

समाज में शुचिता और चारित्र्य के प्रतीकः

समाज-सेवा के जिस उच्चादर्श की आज चर्चा की जाती है उसके समर्थ और साक्षात उदाहरण डॉ. मोहन सिंह थे, क्योंकि उनके जीवन और कृतित्व में वे आदर्श पूरी तरह चरितार्थ हुए हैं। इसका दावा तो नहीं कर सकता कि उनके जीवन के संपूर्ण आदर्श को मैं अपने जीवन और कर्म में हू-ब-बू उतार लूँगा, पर इतना अवश्य है कि आज जो कुछ भी मुझसे समाज व साहित्य के स्तर पर किया जा रहा है, वह डॉ. साहब के जीवनादर्श के अनुरूप है और उनके प्रभाव के ही कारण। डॉ. साहब से समाज में शुचिता एवं चारित्र्य को अपने जीवन एवं लेखन में आत्मसात करना मैंने सीखा और उन्हीं के महनीय सामाजिक संस्कार अर्जित किए।

केवल विद्वता से कोई व्यक्ति महान और पूज्य नहीं होता। डॉ. मोहन सिंह विद्वता के साथ-साथ अन्यान्य विभूतियों से भी संपन्न थे। व्यक्ति रूप में भी वह महान और आदर्श थे। कर्त्तव्यपरायणता, अध्यवसाय, गृहीत कार्य के प्रति लगन और निष्ठा, श्रम करने की शक्ति, सबको यथोचित आदर देने का भाव आदि इतने दुर्लभ गुण उनमें थे कि क्या कहा जाए। इन तमाम गुणों में उनके जिस गुण से मैं अत्यधिक प्रभावित रहा वह यह कि कार्यालय हो या क्लिनिक मैंने उनको बिना काम करते कभी नहीं देखा। जब भी देखा, मेज पर झुके हुए अपनी आँख गड़ाए पैथोलॉजिकल टेस्ट में व्यस्त अथवा किसी आगंतुक के साथ गंभीर विचार-विमर्श में संलग्न पाया। ऐसे वक्त में यदि कोई दूसरा व्यक्ति आ धमकता है, तो प्रायः लोगों को झल्लाहट होती है, पर डॉ. साहब को मैंने कभी झल्लाते नहीं देखा। अपने कार्य में वह कितने ही लीन क्यों न हो, जो भी आ जाए, सबका हार्दिक स्वागत ही वहाँ होता रहा। डॉ. साहब को कभी यह अनुभव नहीं हुआ कि उनका समय नष्ट हो रहा है। इतने आगंतुकों का सहर्ष स्वागत करने में उनके पैथोलॉजिकल टेस्ट की मात्रा में कोई कमी नहीं हुई। इसीलिए तो समाज के वे ऐसे गौरव- स्तंभ हुए जिनके बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से आज समग्र समाज धन्यता का अनुभव करता है। वे एक प्राणवंत, सक्षम और समर्थ समाज-सेवी हुए। सच तो यह है कि इनका मन-मस्तिष्क इन विविध आयामी रूप गुणों का क्रीड़ा-स्थल था। उनके व्यक्तित्व में भारतोय मिट्टी की वही सोंधी-सोंधी, भीनी-भीनी गंध-सुंगध विद्यमान था। इस ज्ञानवृद्ध, साधनावृद्ध, तपे हुए तपस्वी के 'कुंदन-कंचन सम' सुदर्शन पारसमणि व्यक्तित्व के साहचर्य और सान्निध्य से न जाने कितने धातु-कुधातु भी पारस हो गए। धन्य था सारस्वत ऋषि-कल्प का अप्रतिम आर्ष व्यक्तित्व और शत-शत नमन है इस कालंजयी, युगचेता, सुधी सज्जन डॉ. मोहन सिंह के अमर कृतित्व को!!

डॉ. मोहन सिंह जी एक आदर्श गृहस्थ तो थे ही, एक सच्चे आदर्श पुरुष भी थे। इनके दर्शन-मात्र से साधुता का अर्थ अर्थांतर-संक्रमित हो उठता था। इनके तेजोमय व्यक्तित्व में किंचित भी कलुष, कपट या

आडंबर का अस्तित्व नहीं था। कोई भी बेहिचक इनके समीप जा सकता था और जी भरकर इनके विराट् वैदुष्य से विपुलतः लाभान्वित हो सकता था। किसी ने इन्हें कभी किसी को अप्रिय वचन कहते नहीं सुना। मृदुता और सौम्यता की श्लाघनीय विभूति डॉ. मोहन सिंह जी के संसर्ग में जो भी आया, वह इनके आत्मीयतापूर्ण सौजन्य से अभिभूत हुए बिना नहीं रहा। इन्हें किसी ने कभी आवेग, उद्वेग, भावावेश या उत्तेजना का आखेट होते नहीं देखा। गहन व्यस्ताओं में भी वह कभी तनाव-तप्त नहीं होते थे। इन्हें न तो श्लाघा उच्छ्वसित कर पाती थी और न निंदानिष्प्रभी ही। इन्होंने अपने जीवन को सत्य, दया क्षमा, सेवा, उपकार एवं समाज के उत्कर्ष का प्राणाधार बना लिया था। ऐसे सच्चरित्र-सत्पुरुष का जीवन हम सबके लिए सतत बहुमूल्य और उपयोगी तो रहा ही, आज भी प्रेरणादायक कहा जाएगा। शाखांतर शादी-विवाह के पक्षधर डॉ. मोहन सिंह ने अपने एकलौते सुपुत्र डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह का विवाह खूँटी, झारखंड निवासी श्री जी. सी. मेहता, अधिवक्ता की सुपुत्री डॉ. रेखा मेहता से 'बिना दहेज लिए करके समाज के समक्ष प्रेरणा के स्रोत बने।

समाज आज जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है और इस बीच डॉ. मोहन सिंह जैसे उदार पुरुष के गुजर जाने के बाद मुझे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रारंभिक रचना 'साहित्य के साथी' की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं, ज़िससे तुलना करने पर डॉ. साहब का जीवन सहज और उदात्त नजर आता है-

"वस्तुतः परिस्थितियों पर विजय पानेवाले मनुष्यों ने ही प्रत्येक युग में संसार को आगे बढ़ाया है। जातियों का इतिहास व्यक्तियों का इतिहास है। महापुरुष एक अपूर्वशक्ति लेकर आते हैं और देश का नक्शा बदल देते हैं। क्रामवेल न होता तो इंग्लैंड का इतिहास और तरह से लिखा गया होता। नेपोलियन न हुआ होता तो फ्रांस की कहानी और ही तरह की होती। ऐसा देखा गया है कि एक-एक शक्तिशाली महापुरुष जाति को एक खास दिशा में अग्रसर करते समय रास्ते में ही चल बसा और वह जाति अपने समस्त जातिगत तथा ऐतिहासिक परंपराओं और अनुकूल पारिपार्श्विक

परिस्थितियों के बावजूद छिन्न-भिन्न मेघ-मंडल की भाँति विलीन हो गई।"

क्या होता जा रहा है युग को, समाज को, सत्ता को और व्यक्ति को। अब तो सब लुप्त होता जा रहा है। ज्ञान की गरिमा भी, श्रद्धा का विवेक भी, संबंधों की परंपरा भी। पता नहीं माटी को क्या होता जा रहा है, सोंधी गंध की जगह ऐसा प्रतीत होता है मानो रबर पहियों को जलाकर कोई हाथ सेंक रहा हो। कैसी उबासी वाली चमरौंधी गंध। ऐसे समय में डॉ. मोहन सिंह के व्यक्तित्व को याद कर सांस-सांस और रोम-रोम में सुख-संतोष महसूस कर रहा हूँ और बार-बार आज भी ऐसा लग रहा है मानो खजाँची रोड के जाँच-घर में डॉ. साहब के समीप बैठा हूँ और उनकी बातें ध्यान से सुन रहा हूँ। आपका व्यक्तित्व इतना विशाल और उदार था कि जन-सामान्य के दुर्व्यवहारों को भी अपनी सजन्नता के शस्त्र से काटकर उन्हें मधुर बना देते थे। अपने विरोधियों से भी पूर्ण आत्मीयता से वे मिलते थे। किसी के दुःख से सहज ही द्रवित हो उसे यथासाध्य उस परिस्थिति से उबारने हेतु तत्क्षण तत्पर हो जाते थे।सचमुच मानवता के वे सच्चे सेवक थे। पटना के सामाजिक वातायन में डॉ. साहब का स्थान अद्वितीय था, क्योंकि सामाजिक जीवन को गौरवान्वित करने का श्रेय डॉ. साहब का रहा है। उनके सामाजिक जीवन के दर्शन उनके 'सरदार पटेल छात्रावास' में होते हैं। पटना के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए छात्रावास का निर्माण कर उन्होंने समाज व शिक्षा की महती सेवा की।

डॉ. मोहन सिंह उस व्यक्तित्व का नाम है, जिनके हृदयासन पर समाज-संस्कृति की युगल देवियाँ सर्वदा विराजीं, चरैवेति-चरैवेति जिनके जीवन का संचरण गीत रहा, चेतना की स्याही से लिखे गए जिनके अमृत भाव पाटलिपुत्र के सामाजिक जीवन में खेलते रहे और जिसने अपने 'मोहन' नाम को सार्थक करते हुए पाटलिपुत्र की गरिमा को मोहकता प्रदान की। इनका व्यक्तित्व बाधाओं को पैरों तले रौंदकर तूफानों की चोटें सहकर समाज व संस्कृति की मधुमति भूमिका को बनाए रखने में समर्थ रहा। भूत,

वर्तमान और भविष्य के साथ सही समझौता कर युगधर्म निभाना मानव जीवन के इस अद्‌भुत शिल्पी का अपना शिल्प था। दृढ़-संकल्पशक्ति ही इनकी जीवन-यात्रा का संबल थी। इनकी मनस्विता और पुरुषार्थ काल-कालांतर तक जीवन-यात्रा के पथिकों का पाथेय होगा। क्योंकि इनका आदर्श था जन-जन का कल्याण। साथ ही यह संदेश भी-'जो मनुष्य होकर भी मनुष्य के काम न आ सके, उससे तो पशु-पक्षी ही अच्छे।' आखिर तभी तो घर हो या बाहर, देश हो या समाज-सभी में ये अपनापन अनुभव करते थे। वय की सीमा से परे इनका परिश्रम तथा उत्तरदायित्व-निर्वाह की लगन पर आज भी लोगों को विश्वास नहीं होता। जिसने अपना जीवन अपने हाथों निर्मित किया, न कोई अनुदान, न कोई सिफारिश, उस डॉ. साहब ने अपने बल पर ही अपने जीवन का राजप्रसाद खड़ा कर अपने एकमात्र सुपुत्र डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह और पुत्रवधू डॉ. रेखा सिंह के लिए छोड़ गये।

विरासत में कुछ लोगों को बहुत कुछ मिल जाता है। देनेवाला अपने जीवन का पुण्य और कर्मफल भी देकर जाता है। योग्य सुपुत्र उस पूर्ववर्ती युग से, ग्राह्य को ग्रहण कर अपने भविष्य का निर्माण करता है। विद्वान एवं सामाजिक मानसिकता के सुपुत्र की ऐसी ही गतिशील संचरणशीलता उसे कुलीन बनाती है। यदि पुत्र की पात्रता प्रतिकूल हो तो वह पितृ-पुण्य तो नष्ट करता ही है; कानी आँख की तरह पिता की पुण्यात्मा को पीड़ा भी पहुँचाता है। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि डॉ. मोहन सिंह अपने सत्कर्मों से हमारे बीच अपने एकलौते ऐसे सुपुत्र डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह को छोड़ इस संसार से विदा हुए हैं, जिसने न केवल ख्याति प्राप्त अपने चिकित्सक व पैथोलॉजिस्ट पिता के पदचिन्हों पर चलकर चिकित्सा के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनाने का प्रयास किया है, बल्कि सामाजिक कार्यकलापों के प्रति भी उनका अनुराग दृष्टिगोचर हो रहा है। यही नहीं, डॉ. मोहन सिंह की सदाशयता का ही यह प्रतिफल है कि उन्होंने डॉ. रेखा सिंह जैसी सुरूचिपूर्ण संवेदना की प्रतिमूर्ति, सरस एवं जिंदादिल इंसान को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर घर को स्वर्ग बनाया। उनकी मृदु मुस्कान तथा सरस शिष्टाचार के साथ घर आए अतिथियों का स्वागत इस

बात द्योतक है कि डॉ. साहब ने किसी पत्थर का दुरुपयोग नहीं किया, उसे अभिशप्त नहीं रहने दिया। अनगढ़ पत्थर को भी मूरत में बदल दिया, उसे पिघलाव प्रदान किया और अंतर्मन की अहल्या को उकेरा। आखिर तभी तो आज भी जब कभी डॉ. साहब के कदमकुआँ स्थित निवास पर मैं अपने मित्रों सहित जाता हूँ तो मुझे डॉ. रेखा सिंह का आतिथ्य-सत्कार देख-पाकर सुखद-शुभ अनुभूति का अहसास होता है।

यहाँ यह कहना यथोचित होगा कि आज की उपभोक्तावादी अपसंस्कृति में जब संबंधों में दरार दीख रहा हो, रिश्तों में टूटन हो, विरले ही लोग अपने पिता की धरोहर को सहेज पाते हैं और समाज में रूचि लेते हैं। सच तो यह है कि समाज को तब्दील करने की बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, बेइंतहा शौक तो फरमाते हैं, किंतु हकीकत से रू-ब-रू होने पर विमुख होने से बाज नहीं आते हैं। यहाँ तक की ख्याति प्राप्त पिता की यादों को ताजा रखने में भी हिचकिचाहट महसूस करते हैं और अंततः वे समाज से पूर्णतः कट जाते हैं। ऐसे वक्त हमें कबीर की ये पंक्तियाँ याद आ रही हैं-

देहरी तक मेहरी से नाता, द्वारे तक सगा भाई,
मरघट जाए कूटुंब कबीला; हंस अकेला जाई।

इस तरह समाज के लोग भी वैसे घरों में जाने से कतराते हैं। आपको यह जानकर सुखद अनुभूति होगी कि डा. मोहन सिंह इस तथ्य के अपवाद सिद्ध हुए जिन्होंने अपनी हार्दिकता और आदमीयत को सौ फीसदी अपने पुत्र व पुत्रवधू के कँधों पर डालकर अपने वंश तथा समाज के गौरव को बढ़ाया। ऐसे ही आदर्श पुरुषों का यश सारे संसार में प्रसारित होता है-'कीर्त्तिर्यस्य, स जीवति।' इस अत्याधुनिक विषम और विषमय वातावरण में, जहाँ दुरित, द्वंद्व, द्वेष एवं दुरंत जैसी दानवी प्रवृतियाँ नग्न नृत्य कर रही हैं और जिन्हें देखकर सरसता एवं जिंदादिली घबराती है, दूर से दुआ-सलाम कर लोग निकल जाना चाहते हैं, डॉ. साहब का घर इंसान को खींच लेता है। आखिर क्यों? इसका एक मात्र कारण है कि डॉ. साहब ने सामाजिक सीमा के अंतर्गत जिन्हें उपकृत किया है, उनलोगों ने अकिंचन भाव से खुद

को भी स्वीकारा है और डॉ. साहब के सुपुत्र व पुत्रवधू अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन में अपनी हार्दिकता का परिचय देते हैं। उनके ये कृत्य और शिष्टाचार उनकी मानवीय-संवेदना और सामाजिक-मानसिकता का परिचायक है। पुत्र,पुत्र-वधू सभी के लिए मृदुभाषी, संयत एवं स्नेही हैं। डॉ. साहब व उनकी धर्मपत्नी का आदर तो ये दोनों करते ही रहे, सेवा में भी कोई-कसर उठा नहीं रखा। इसका एक खास कारण यह भी था कि डॉ. मोहन सिंह जी के परिवेश एवं संस्कारों के बीच वे पले-बढ़े।

इस जीवनी-ग्रंथ को स्वरूप प्रदान करने के निमित्त तत्पर डॉ. रेखा सिंह और डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह को हम अनेक बार अशीषते हैं, जिसने ऋृणी संतति होने का अपना दायित्व निभाया है। दोनों डॉ. साहब के बताए रास्ते पर चलकर चिकित्सक हैं। तमिल के प्रख्यात संत तिरुवल्लूवर ने कहा है-"संसार में सर्वाधिक सौभाग्यशाली महामना वे लोग हैं जिनकी संतान संसार की विद्वान् मंडलियों में आदरणीय स्थान प्राप्त कर लेती है।" इस माने में मैं कहूँगा कि डॉ. मोहन सिंह एक सौभाग्यशाली व्यक्ति थे। पुत्र-धर्म, पति-धर्म और मित्र-धर्म सभी क्षेत्रों में हर हिसाब से वे सदा ही आदर्श रहे।

गाँधीवादी विचारधारा के अनुयायी, स्वेदशी आंदोलन के प्रबल पोषक और एक प्रखर पैथोलॉजिस्ट के रूप में डॉ. मोहन सिंह ने समाज को एक स्पष्ट दिशा-निर्देश दिया। उनमें तेजस्विता और ऊर्जस्विता का अद्‌भुत समन्वय था, जिसके कारण उन्होंने जो भी कार्य प्रारंभ किया, उसमें उन्हें सफलता मिली। पैथोलॉजिकल टेस्ट उनके लिए केवल पेशा नहीं, बल्कि मिशन था। अपने मिशन में मशगुल रहते-रहते एक दिन डॉ. साहब सदा के लिए चल बसे और गहरी नींद में सो गए। खजाँची रोड स्थित उनके जाँच-घर में उनकी मीठी आवाजें खामोश हो गई और हम सब उनकी मधुर वाणी से वंचित हो गए-

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना,
तुम्हीं सो गए दास्तां कहते-कहते।

प्राचीन, ऐतिहासिक, सस्कारी संस्कृति से जुड़े डॉ० साहब उस नवीनता को छोड़ नहीं पाए, जिसे उन्होंने देखा था। आत्मसम्मान एवं

जिंदादिली के साथ उन्होंने जीवन जिया और उसी तरह की मृत्यु भी हुई। ये पंक्तियाँ उचित ही है।

'कुछ भावाभिव्यक्ति बरवस ही ऐसी घड़ियों में जी जाती,
अति पूरित जल राशि यथा बन सरिता सागर में खो जाती'।

यह भाग्य की क्रूर विडंबना है कि भारत की आजादी के अट्ठावन साल बीत जाने के बाद भी डॉ. मोहन सिंह सरीखे सामाजिक प्रतिबद्धता के व्यक्तियों का समाज में अभाव हो, जो अपनी सूझबूझ और नि:स्वार्थ भाव के साथ समाज व देश को उस सुरक्षित एवं समृद्ध भविष्य की ओर ले जाएं, जिसका स्वप्न हमें आजादी दिलानेवाले एवं नैतिक मूल्यों के प्रति पूर्ण प्रतिबद्ध डॉ. मोहन सिंह ने देखा था। आज देश में भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, सांप्रदायिकता एवं जातीयता का बोलबाला है और हमारा समाज एवं सार्वजनिक जीवन अधोगति के निम्नतम स्तर को छू रहा है। आम आदमी इस बात को मानकर चलने लगा है कि बड़े लोग आए दिन घोटाले करने में समर्थ ही नहीं होते, बल्कि उन घोटालों पर पर्दा डालने तथा उसे रफा-दफा करने में भी सक्षम हो रहे हैं। यह स्थिति चिंताजनक तो है ही, शर्मनाक भी है। आजादी के इन अट्ठावन सालों में सार्वजनिक जीवन से जुड़े लोगों के प्रति जिस गति से अविश्वास और भर्त्सना की भावना पनपी और फैल रही है, वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि जनमानस में उनके प्रति किसी प्रकार की आस्था नहीं बची है। ऐसे में केंद्र व राज्य के मंत्रियों, राजनीतिक दलों के नेताओं, नौकरशाहों तथा उच्च पद पर आसीन अधिकारियों जैसे गरिमामय और महत्वपूर्ण पद के साथ जब लांछन जुड़ रहे हैं तो सोचना पड़ता है कि हमारे जनतंत्र का ढाँचा कितना कमजोर होता जा रहा है। इसके मद्देनजर डॉ. साहब की सबसे बड़ी चिंता थी-सार्वजनिक जीवन में लगातार लग रहे घुन से उबरने की। समाज के बारे में सजग, संवेदनशील और सहृदय समाज सेवी के मन में बेचैनी और विद्रोह की भावना पैदा होना स्वाभाविक था।

देश में आज कई ऐसे वर्ग हैं जो अपनी-अपनी काली करतूतों से समाज व देश को दूषित कर रहे हैं खासकर जब देश के कर्णधार लोग

मार्ग से भटक रहे हैं, अपने पवित्र पेशे के साथ विश्वासघात कर रहे हैं, तो ऐसे समय में प्रबुद्ध तथा समाज के जागरूक लोग ही हैं, जो उनकी काली करतूतों का भंडाफोड़ कर सकते हैं तथा जनमानस को कुरेदकर उन्हें दिशा प्रदान कर सकते हैं। सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. मोहन सिंह जी ने अपने जीवन में यही काम किया। आज जब लोहिया या जे.पी. हमारे बीच नहीं हैं और गाँधी अवतार लेनेवाले नहीं हैं, तो डॉ. साहब सरीखे बुद्धिजीवियों के बताए रास्ते पर चलकर समाज में शुचिता और पारदर्शिता लाई जा सकती है तथा भ्रष्टाचार, झूठ और पाखंड की व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई जा सकती है। हाँ, यह जरूर है कि आज की इस विषम परिस्थिति में विवेक से काम लेना होगा, क्योंकि विवेक वह शक्ति है जिससे हमें भले-बुरे की पहचान होती है। उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक में भेद इसी के द्वारा समझा जा सकता है। विवेक एक सामाजिक और अर्जित गुण है जिसका समाज के विकास में विशेष महत्व है। समाज का स्थायित्व और सुख व्यक्ति के विवेक पर निर्भर है, क्योंकि समाज के उद्येश्य और मान्यताएँ विवेक द्वारा निर्धारित होती हैं। विवेक सामाजिक जीवन में सामंजस्य, अनुरूपता और सफलता का संचार करते हैं। इसमें इतनी शक्ति होती है कि मात्र कुछ नारों से पूरे समाज को आंदोलित किया जा सकता है। आखिर तभी तो डॉ. मोहन सिंह ने भी विवेक और संकल्प का सहारा लेकर समाज को आंदोलित किया। देश व समाज आज जिरा भयावह दौर से गुजर रहा है उसमें समय का तकाजा है कि डॉ. मोहन सिंह की तरह विवेक व संकल्प के बल पर समाज को आंदोलित करें और देश के ज्वलंत मुद्दों पर जनमत तैयार करें। पूर्व में अनेक उलझनों के बावजूद हमारे नायकों ने समाज की प्रगति का प्रयत्न शिथिल नहीं होने दिया था, परंतु आज स्थिति चिंतनीय हो गयी है, क्योंकि आज के हमारे नायक की कोई दृष्टि नहीं रह गयी है। उन्हें केवल अपनी कुर्सी और पद की चिंता है। इसलिए वे समाज को सही दिशा प्रदान करने में असमर्थ हैं। यही कारण है कि आज बाहर निपटने की शक्ति संचित करने से पूर्व हमारी अंदरूनी टूटन शुरू हो गई है। समाज के उत्थान का लक्ष्य भुलाकर हम सब लोग आत्म-पुष्टि के लिंए व्यग्र हो चले हैं। आज की हमारी स्थिति

पांडवों जैसी हो गई है। अंतर सिर्फ इतना ही है कि पांडव संघठित व कर्त्तव्य-निष्ठ बने रहे और हम विघटन में फँसकर केवल अभिनय भर कर रहे हैं। ऐसे वक्त आज के संदर्भ में हम डॉ. मोहन सिंह के आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त कर अपने कर्त्तव्य-पथ को निर्धारित करने का प्रयास करें, तभी कुछ बात बन सकती है।

आज हमारे सामने एक अहम मसला यह है कि हमारी अस्मिता पर ही खतरा-सा दिखने लगा है। ऐसी घड़ी में यदि सब लोग चुप्पी साध लें तो एक दिन ऐसा आ सकता है जब यहाँ अपने ही राज्य में जगह नहीं मिलेगी। ऐसे वक्त समाज के सजग नागरिकों का भी कुछ अपना कर्त्तव्य बनता है कि हम राष्ट्रीय स्वतंत्रता, एकता, प्रभुसत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए जहाँ कृतसंकल्प हों, वहीं समाज की समृद्धि के लिए भी अग्रसर हों। इसमें डॉ. मोहन सिंह जी के बताए रास्ते हमारे लिए प्रेरणा-स्रोत होंगे। देश व समाज को जब भी विपत्ति का सामना करना पड़ा डॉ. साहब ने उस चुनौती को स्वीकार कर उसका सामना किया। सुप्रसिद्ध लेखक रामकृष्ण मेहता ने अपनी 'समाज के अनमोल रत्न' पुस्तक में डॉ. मोहन सिंह के संबंध में लिखा है कि बिहार में 15 जनवरी, 1934 में जब भूकंप आया था तो इस बीच डॉ. साहब ने अपने गाँव जाकर छह गरीब असहाय बच्चों को नि:शुल्क पढ़ना-लिखना सिखाया। डॉ. साहब के अनुसार सार्वजनिक जीवन में शुचिता लाने के लिए भ्रष्टाचार मिटाने का प्रयास तो करना होगा। भ्रष्टाचार के विरूद्ध संपूर्ण लड़ाई में समाज के ईमानदार व्यक्तियों को आगे आना ही होगा, क्योंकि इस समस्या पर दुख व्यक्त करने अथवा क्षोभ दिखलाने मात्र से कुछ होना नहीं है। व्यवस्था में जहाँ कहीं भी राष्ट्रहित को सर्वोपरि माननेवाले व्यक्ति हैं उन्हें कम-से-कम अपने दायरे में तो भ्रष्टाचार मिटाने का कुछ अतिरिक्त प्रयास करना ही होगा। यह मानकर कि किसी छोटे प्रयास से स्थितियाँ बदलनेवाली नहीं हैं, ज्यादातर लोग प्रयास करने से ही कतराते हैं। शायद यही कारण है कि भ्रष्टाचार को मिटाने की दिशा में सफलता मिलना दिन-प्रतिदिन दुष्कर होता जा रहा है, क्योंकि इस दिशा में होनेवाले प्रयासों की संख्या बढ़ने की बजाय घटती चली जा रही

है। आखिर इसके क्या कारण हैं? इस बुराई के विरोध में अपनी राय व्यक्त करनेवाले लोग चुपचाप क्यों हो जाते हैं? इन प्रश्नों पर हमें गंभीरता से विचार करना होगा।

पक्षी तिनके जोड़कर सुखद नीड़ बना लेता है, एकाकी प्रयास से। मोहन बाबू की तरह हर आदमी अगर थोड़ा-थोड़ा प्रयास करे तो स्थितियाँ बदल सकती हैं। इस प्रकार मोहन बाबू व्यक्तिगत प्रयत्न का महत्व हमें समझा गये हैं।

●●●

खण्ड-दो

सेवा-काल

डॉ. साहब से मेरा परिचय

जहाँ तक मुझे याद है मैं समझता हूँ डॉ. मोहन सिंह जी से मेरी मुलाकात 1974 में पटना स्थित सरदार पटेल छात्रावास के किसी कार्यक्रम में हुई थी। 1973 के दिसंबर में जब मेरा तबादला राँची से पटना हुआ तो अपनी मानसिकता के अनुरूप यह स्वभाविक हो गया कि पटना के सामाजिक तथा सांस्कृतिक रंग-ढंग में मैं रच-बस जाऊँ। इसी क्रम में डॉ. साहब से जब मेरा परिचय हुआ, उनके बात-विचार, उनके काम करने के ढंग तथा उनकी सामाजिक मानसिकता से मैं बड़ा प्रभावित हुआ। उनकी कार्य-शैली तथा सामाजिक कार्यों में गहरी रूचि का मेरे उपर गहरा प्रभाव पड़ा। अनेक प्रकार की उनकी व्यस्तता के कारण मैं उन दिनों उनसे अक्सरहा तो नहीं मिल पाता था किंतु जितनी बार उनसे मिला, उसकी छाप मेरे हृदय पर गहरी पड़ी और आज भी है। इसी का परिणाम था कि प्राय: प्रत्येक सप्ताह में उनसे मिलकर दो बातें करना मैं अपना फर्ज समझने लगा था। ऐसे उदार एवं निष्ठावान सामाजिक हस्ताक्षर का सानिध्य पाकर मैं गौरवान्वित हुआ। मुझे अच्छी तरह याद है, डॉ. साहब ने उस दिन की प्रथम मुलाकात में जिस आत्मीयता और आनंद से पुलकित होकर मुझ पर अपना स्नेह दर्शाया था, उसे मैं आज भी भुलाए नहीं भूलता। तब से आज तक मानों मैं उनके विशेष स्नेह का अधिकारी बन बैठा।

इसके बाद पटेल सेवा संघ तथा सरदार पटेल छात्रावास के माध्यम से डॉ. साहब से मेरा मिलना-जुलना आगे बढ़ने लगा। अक्सर वे मुझे बुलाते और मैं इसे आत्मीय भाव से अपने को उपकृत मानता। इस तरह उनके अधिकाधिक निकट आते जाने का सुअवसर मुझे मिलता गया जिनकी न जाने कितनी स्मृतियाँ आज भी ज्यों-की-त्यों मन की आँखों के आगे झलक जाती हैं और हृदय एक अकथनीय भावना से अभिभूत हो उठता है।

कुछ घटनाएँ अपनी कहानी आप कहेंगी। मैं बानगी के रूप में उनमें से

कुछेक को आपके सामने परोस रहा हूँ।

तो, लीजिए उनकी गंजी की कहानी याद आ गई। डॉ. साहब आदतन अपनी गंजी तथा अंडरवियर प्रतिदिन फिचकर बाथरूप में ही पसार देते थे। एक दिन उनकी धर्मपत्नी की नजर उनकी फटी गंजी पर पड़ गई। बस क्या था, उन्होंने उसी दिन डॉ. साहब से नई गंजी खरीदने के लिये बाजार चलने का अनुरोध किया। दोनों पति-पत्नी एक रिक्शा लेकर चल पड़े बाजार को। जनवरी का महीना, जाड़ा अपनी ऊँचाई को छूने का प्रयास कर रहा था। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। उस कंपकंपी के मौसम में डॉ. साहब की नजर रिक्शा चालक की पीठ पर पड़ी। उसके शरीर पर चादर तो दूर, गंजी जालीदार न होने पर भी वह जालीदार लग रही थी। फटी गंजी जिसका एक छोर दूसरे तथा दूसरे का तीसरे छोर से बंधा था, रिक्शा चालक के शरीर में लटक रही थी। डॉ. साहब ने अपनी धर्मपत्नी का ध्यान रिक्शा चालक की फटी गंजी की ओर आकृष्ट करते हुये उनका ख्याल पूछा।

गंजी की दूकान जाकर दो गंजियाँ खरीदी गईं। एक पहले रिक्शेवाले को पहनायी गई और दूसरी डॉ. साहब के लिये घर लाई गई। रिक्शावाला गंजी पाकर निहाल हुआ और एक गरीब आदमी के लिये डॉ. साहब का ख्याल आज एक नमूना बनकर कहानी बन गई।

डॉ. साहब विनम्रता की मूर्ति थे। बड़े ओहदे तथा अधिक पैसे वालों में जो अहं रहता है वैसा मैंने न तब देखा और न उनके तब के जीवन में। बिना किसी संकोच के किसी के यहाँ चला जाना तथा उनके दु:ख-दर्द में साथ देना तो जैसे उनके रोजमर्रा की आदत बन गई थी। अच्छा हुआ इसी संदर्भ में पटना जिला खादी ग्रामोद्योग संघ के पूर्वमंत्री श्री रामरतन बाबू की जूबानी, डॉ. साहब की कहानी, मेरी कलम की मेहरबानी से यों निकली-

फरवरी, 91 का महीना, तारीख 23 रविवार का दिन। डॉ. साहब के निवास-प्रांगण में गुलाब के विभिन्न प्रकार के फूलों की सुगंधियाँ। उन्हीं पौधों के बीच बैठकर डॉ. साहब से लगभग दो घंटे तक बातचीत के बाद अपनी घर वापसी के दौरान लगा कदमकुआँ पार्क के समीप स्थित रामरतन

बाबू के खादी ग्रामोद्योग संघ के प्रांगण में जाकर उनसे मिलूँ तथा उनके समाचार के साथ-साथ डॉ. साहब के बारे में उनके संस्मरण से अवगत होऊँ। मेरे अनुरोध पर रामरतन बाबू के मानस पटल पर गत दो वर्षों में घटी रोमांचित घटनाओं की रेखाएँ खींच गईं। सुखद स्मृति में उनकी आँखें सजल हो आईं और आँसुओं की बूदों से जो मुझे मिली वह आपके सामने प्रस्तुत है-

रामरतन बाबू अपने पैर के घाव से पीड़ित पलंग पर लेटे थे कि डॉ. साहब अहले सुबह उनके कमरे में प्रवेश किये। घर-परिवार के सभी सदस्य भौचक्क रह गये उन्हें देखकर। डॉ. साहब घाव की अद्यतन स्थिति से जानकारी हासिल करने के ख्याल से ही वहाँ पधारे थे। प्रख्यात सर्जन डॉ. नरेन्द्र प्रसाद जी का इलाज चल रहा था। संयोग ऐसा हुआ कि डॉ. नरेन्द्र प्रसाद जी भी उसी समय वहाँ आ धमके तथा डॉ. मोहन बाबू को देखकर उन्हें भी कुछ देर के लिये आश्चर्य हुआ, हालांकि वे डॉ. साहब की सहृदयता से बखूबी परिचित थे। इसी से संबद्ध एक और प्रसंग उन्होंने सुनाया।

रामरतन बाबू अपने उसी घाव की बीमारी के कारण रोग शय्या पर पड़े थे। कार्तिक का महीना छठ व्रत के दूसरे अर्घ्य का दिन। लगभग आठ बजे होंगे सुबह के। डॉ. साहब अपने हाथ में छठ व्रत का प्रसाद लिये हाजिर हैं रामरतन बाबू के दरवाजे पर। भला आप ही बताएँ, क्यों न हो किसी को इस पर आश्चर्य? यह जानते हुये भी कि रोगी को डायबेटीज है, छठ वर्त का एक मात्र प्रसाद ठेकुआ डॉ. साहब ने उनकी ओर बढ़ाते हुये विश्वास दिलाया कि भगवान का यही प्रसाद उन्हें इस घाव से मुक्ति दिलायेगा। न चाहकर भी रामरतन बाबू ने उस प्रसाद को ग्रहण किया और भले चंगे हुये। जब मैंने यह वृतांत सुना, तब आँखें भर आई थीं।

डॉ. साहब की मनुष्य और मनुष्यता में अटूट आस्था थी जिसके कारण वह मानव मात्र में अंत तक अपना विश्वास बनाए रखने में कामयाब रहे और उनकी यह आस्था दरकी तो कई बार, पर टूटी कभी नहीं। मानवता की यही डोर उन्हें व्यक्ति और समाज से तथा उसकी अच्छाइयों से बाँध

रहीं जिसके चलते उन्होंने एक सामान्य जन से लेकर उच्चपदस्थ लोगों तक में जो देवत्व का अंश देखा उसे जस-का-तस स्वीकारा तथा अपने कार्यकलापों में उतारकर गए जो हम सबके लिये सदैव प्रेरणादायी है। डॉ. साहब का जाना एक युग का अवसान है, एक गौरवपूर्ण उदात्त परंपरा का अवसान है; एक विराट ज्योति पूँज का अवसान है जिससे हम रोशन होते थे, जिससे सभी संरक्षित रहकर सुरक्षित रहा करते थे। सच यह भी है कि ऐसे युग निर्माता कभी मरते नहीं, वे सदैव प्रेरणा बन हमारे साथ होते हैं। डॉ. साहब का समग्र जीवन और उनका भागीरथ कार्य सदैव समाज व देश में आदर पाएगा, पीढ़ियाँ उनसे सतत् प्रेरणा पाती रहेंगी। सुप्रसिद्ध साहित्यकार नेमिचंद जैन की ये पंक्तियाँ मोहन बाबू के पराक्रम का सही अर्थ देती हैं:

'है कांप रहा जिससे संसृति का वक्ष-देश
है कंठ रूंधा-सा पलकें अविचल निर्निमेष।'

कहना होगा कि मोहन बाबू का व्यक्तित्व हिमालय सा ऊँचा था। हिमालय ऋषियों की पावन वास भूमि, मोहन बाबू के हृदय में मानवता बसती थी, विनम्रता में बेंत की तरह लचीला उनका व्यक्तित्व था। कर्त्तव्य-पथ पर हिमालय जैसी अडिगता, विचारों में सागर जैसी गहराई, हृदय की विशालता आकाश जैसी। मेरा उनसे मिलना नदी का विशाल सागर से मिलना था। उनका उदात्त चरित्र और उनकी कर्मठता ने बहुतों को प्रभावित किया, बहुतों का जीवन संवर गया। मैं भी उनमें एक हूँ।

डॉ. साहबः एक सुपरिचित पैथोलौजिस्ट

हम सभी इस बात से अवगत हैं कि डॉ. मोहन सिंह ने पटना मेडिकल कॉलेज के प्रोफेसर एवं पैथोलौजी विभाग के विभागाध्यक्ष के पद को भी सुशोभित किया था। वर्षो-वर्षो से सेवारत पटना के खजांची रोड स्थित 'जाँच घर' से आप सभी पूर्व परिचित हैं। पैथोलौजिकल टेस्ट में जितनी ख्याति इस 'जाँच घर' ने अर्जित की है उतनी ख्याति शायद ही अबतक किसी और पैथोलौजिकल क्लिनिक ने पाई हो। इसकी ख्याति तथा प्रतिष्ठा का सारा श्रेय डॉ. मोहन सिंह को जाता है। इस 'जाँच घर' की एक

खास खूबी रही है जिसके फलस्वरूप पटना के दूसरे क्लिनिकों से इसने एक अलग पहचान बनाई है और वह है किसी भी तरह की जाँच को डॉ. साहब के अपने हाथों किया जाना। जहाँ तक मेरी जानकारी है बहुत कम ही ऐसे क्लिनिक हैं जहाँ पैथोलौजी के चिकित्सक स्वयं ही जाँच करते हैं। अधिकतर क्लिनिकों में टेकनिशियन ही जाँच कर रिर्पोट पैथोलौजिस्ट के समक्ष प्रस्तुत कर उनके हस्ताक्षर भर मात्र प्राप्त करा लेते हैं जाँच प्रतिवेदन पर, किंतु जहाँ तक 'जाँच घर' का सवाल है खून हो या पैखाना, पेशाब हो या पीव, डॉ. मोहन सिंह स्वयं उनकी जाँच सदैव करते रहे हैं। यही इस क्लिनिक की खाशियत रही है जिसके परिणामस्वरूप इसने इतनी लोकप्रियता अर्जित की।

एक डाक्टर से सहानुभूति, दक्षता, होशियारी और समझदारी की उम्मीद की जाती है। डाक्टर बन जाने से बेहतर कोई समाज सेवा, कोई उपकार, कोई सुनहरा अवसर और कोई मानवीय जिम्मेदारी नहीं होती। इलाज करने के लिये डॉक्टर को जिस तरह कुछ तकनीकी दक्षता की जरूरत होती है उसी तरह वैज्ञानिक ज्ञान और मानवीय संवेदना की भी। डॉ. मोहन सिंह ने अपनी इस क्षमता को पूरी मानवीयता, साहस और ईमानदारी से निभाने का सतत् प्रयास किया और यही इनके चरित्र की विशेषता थी जो उनके साथियों तथा दूसरों के लिये मिसाल बन गयी। एक डॉक्टर को इससे अधिक और क्या चाहिए?

एक मरीज सिर्फ वही नहीं जो वह दीखता है कि उसके अंग-भंग हैं या अंदरूनी हिस्से खराब हैं बल्कि वह एक मानव है जिसमें उम्मीदें हैं, संवेदनाएं हैं, उसमें डर है, भावना है, विश्वास है। एक मानव विज्ञानी की तरह डॉक्टर के लिये भी कोई मानव घृणित नहीं। सच्चा डॉक्टर मरीज के लिये ईमानदार भी होता है और बेईमान भी, सहृदय भी होता है और कठोर भी, देवता भी होता है और शैतान भी, क्योंकि वह मरीजों की सेवा करता है। मरीज की अपेक्षाओं के अनुरूप डॉ. मोहन सिंह ने पूरी निष्ठा और लगन से अपने दायित्व का निर्वाह किया, यह कहने में मुझे कोई हिचक नहीं। आखिर तभी तो आज भी उनके 'जाँच घर' मरीज़ों से खचाखच भरा

देखने को मिलता है। डॉ. साहब की साख ने इस क्लिनिक को अब्बल दर्जे की क्लिनिकों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। अधिक उम्र के रहने पर भी परिश्रम करने की अटूट क्षमता, आठ-आठ, दस-दस घंटे तक लगातार जाँच की क्रिया में व्यस्तता आदि गुणों के फलस्वरूप डॉ. साहब ने हम सबों के दिल में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है।

पैथोलॉजिस्ट की हैसियत से पीड़ित मानवता की व्यथा को सहने की अतुलनीय क्षमता के साथ ही पारदर्शी निश्च्छलता और निष्कपटता उनमें स्पष्ट देखने को मिलती है। जब भी कभी हमें उनके जाँच घर में उनके साथ बैठने का अवसर प्राप्त हुआ है अपने या अपने परिवार के किसी सदस्य के खून आदि की जाँच के सिलसिले में उनसे मिलने का मौका मिला है, हमेशा उन्होंने मेरे मस्तिष्क में एक अग्रजतुल्य आदरवृति पैदा की है। भला क्या मजाल कि जाँच-शुल्क के विषय में मैं अपनी जिह्वा खोल पाऊँ! अपनी जेब से कुछ निकालने का साहस जुटा पाऊँ। ऐसा था उनका व्यक्तित्व। यही नहीं, बल्कि हमने गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति भी अक्सर देखी है। हजारों-हजार पीड़ित, शोषित, दलित तथा आर्थिक स्थिति से जर्जर लोगों की मुफ्त जाँच करना जैसे उनका स्वभाव ही बन गया हो। इस भौतिकवादी युग में भी पैसे की तरफ उनका झुकाव कदापि नहीं रहा। समाज सेवियों की तरफ तो उनकी नजर हमेशा से ही रही। यदि कोई समाज सेवी उनके द्वारा खून आदि की जाँच-शुल्क देने का जुरत करता तो वे बड़ी सहजता से कह बैठते-'मुझे भी तो सेवा करने का मौका दीजिए।' अलोभ, तितिक्षा तथा गहरी मानवता की मानो प्रतिमूर्ति थे वे। यदि आप उनके थोड़े भी परिचित हुये तो जाँच-शुल्क की बात तो अलग, बल्कि उल्टे केले, सेव, अमरूद आदि मौसमी फलों के स्वागत से आप वंचित नहीं हो पायेंगे। अपने हाथों से फलों को काटकर आगत-बंधुओं के आगे बढ़ाने में वे हमेशा गर्व का अनुभव करते थे। भला आप ही बताएँ कितने ऐसे धनी व्यक्तित्व के लोगों से आपकी अबतक मुलाकात हुई हैं? वे अपने रीति-रिवाजों, बात-व्यवहारों में बराबर आडंबरहीन रहे। वे स्वयं अपने कार्यों में एक वरिष्ठ कोटि के आत्मत्याग की भावना, नैष्ठिक संयम

और गंभीर मानवीय दयाभाव से प्रेरित रहे। उनका व्यक्तित्व इतना शक्तिशाली था कि उन्हें कोई भी चुनौती देने का दुस्साहस नहीं कर सकता।

गौरवान्वित हुआ समाज ऐसे सामाजिक कर्म योगी को अपने बीच पाकर। समाज को जागृत करने की जो लौ उन्होंने जलायी वह न कभी बुझेगी और न कभी मद्धिम होगी।

●●●

खण्ड-तीन

सांगठनिक क्रियाकलाप काल

एक चिकित्सक के सामाजिक सरोकारः

परिवर्तन युग का स्वभाव है। वह उसकी जीवंतता का लक्षण है। व्यक्ति का समग्र चिंतन, विचार की दशाएँ एवं दिशाएँ हमारा समूह-बोध उसी परिवर्तन के विषय हैं। प्रत्येक युग के साथ विचार की एक निश्चित भूमिका होती है जो पिछले चिंतन से प्रभावित होती है और आनेवाले विचार को दृष्टि देने का काम करती है। हम चाहे कोई हों, चाहे किसी से संबद्ध हों, चाहे कहीं से जुड़े हों, समूह के विचार को हम टाल नहीं सकते। हमारे चिंतन की यह सहज प्रक्रिया है कि उसका समाज से संबंध हो।

समाज की स्वस्थ या रूग्न अवस्था के लिए जिम्मेदार तत्त्वों की चर्चा करते वक्त हम उसके सामाजिक आशय को भूलकर नहीं चल सकते। सामाजिक कार्यकर्ता या समाज सेवी की भूमिका ग्रहण कर लेने के उपरांत समाज के प्रति निश्चित विचार के लक्ष्य तक पहुँचने के पश्चात् उसके मूल में हमें उसी वैदिक प्रार्थना के सूक्त की बरबस याद् आ जाती है-'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे।' अर्थात हमारी चिंतन-धारा जिस अपौरुषेय वाड.मय से निःसृत होने की बात उठाई जाती है; उसी में इस मित्र की आँख की चर्चा पाई जाती है।

यह मित्र की आँख और मैत्रीभाव ही सहयोग की पहली सीढ़ी है। इसी से भाईचारे का विचार जाग सकता है। सहयोग भावना स्वस्थ, शुद्ध, संपन्न हृदय की असाधारण परिणति है। भाईचारे का संबंध घोषणा की चीज न होकर हृदय का समर्पण भाव है। आपसी भाईचारे और सहयोग का विचार न केवल सामाजिक आवश्यकता है, अपितु विकसित मानवता के संतुलन की स्थिति का अनिवार्य तत्त्व भी। सुखी और शांत जीवन-प्रणाली के लिए सबको मिल जुलकर रहना अति आवश्यक है, क्योंकि आपसी सहयोग से एक दूसरे का सुख-दुःख समझा जा सकता है।

वर्तमान परिवेश की परिस्थितियाँ आज जब समाज को खंड-खंड

करने में लगी हैं तब सामाजिक दायित्व का सवाल खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में समाज का कोई भी सजग नागरिक खंडित होते समाज तथा इसके समक्ष उपस्थित चुनौतियों का मूकदर्शक नहीं रह सकता। आज हमारे समाज में अनेकों बुराईयाँ पैदा हो गई हैं जैसे दहेज प्रथा, बढ़ते बलात्कार की घटनाएँ जिसकी वजह से औरतें मजबूरन आत्महत्या जैसे कदम उठाने को अभिशप्त हैं। जीने की इच्छा होते-हुए-भी उसे अपनी इच्छा का गला घोंटना पड़ता है। बेटों के बाप पैसे के लिए बेटी के बाप के जूते घिसवाते हैं तथा दहेज के लिए तरह-तरह के कुकर्म करते हैं। ये सारी बातें समाज के लिए कहीं से भी अच्छी नहीं मानी जा सकती हैं। आज समाज में भले लोगों की कमी होती जा रही है। जनसाधारण इस बात को महसूस करता है कि दहेज प्रथा समाज की बुराईयों में पराकाष्ठा पर है। इस गंभीर सवाल पर डॉ. मोहन सिंह जी ने बड़ी गंभीरता से विचार किया था। कारण कि वह एक अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति थे। आखिर तभी तो पटना के खजाँची रोड स्थित अपने जाँच घर में पैथोलॉजिकल टेस्ट के दरम्यान भी अपने सामाजिक दायित्व का निर्वहन करते रहते थे और आए दिन बेटी की शादी के लिए ढेर सारी सूचनाएँ बेटी के बाप को मुहैया कराकर इसका समाधान निकालते थे, क्योंकि इन बुराईयों को समाप्त कर एक स्वस्थ समाज बनाने में जहाँ वे विश्वास करते थे वहीं दूसरी ओर अपने स्तर से भी प्रति वर्ष दजनों शादी कराकर इस समस्या का निदान निकालते थे। क्या मजाल कि कोई बेटा का बाप इनके रहने पर तय दहेज की रकम को स्वीकार न कर ले।

इस प्रकार जब हम डॉ. साहब के समाज से जुड़े संबंधों पर आज विचार करते हैं तो पाते हैं कि उनके मन में सदैव यह बात रहती थी कि समाज को दहेज जैसी बुराइयों तथा अनन्य संकटों से घिरा हुआ नहीं रहने दिया जा सकता। उसके लिए प्रत्येक पग पर सजग होना पड़ेगा, ऐसी धारणा उनके मन में रहती थी।

डॉ. साहब ने समाज के व्यक्ति को एकदम निकट से देखने और जानने की कोशिश की, क्योंकि उसकी निकटता प्राप्त किए बिना उसकी समस्याओं का निदान संभव नहीं, ऐसा विश्वास था उनका। वे बराबर कहते

थे कि कोई भी क्रांति व्यक्ति और समाज से ही शुरू होती है और जो कुछ भी बनना है उसकी जड़ें इसी समाज में हैं। इसलिए कोई भी आवाज यहीं से उठनी चाहिए। न्याय और अन्याय इसी समाज के हिस्से हैं। डॉ. साहब ने इसे अच्छी तरह अनुभव किया। कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'कोई मेरे साथ चले' शीर्षक अपनी कविता में कुछ इसी आशय की अभिव्यक्ति दी है-

"अन्याय को हम न्याय बनाकर रहेंगे।
इस धरती से जोर-जुल्म मिटा करके रहेंगे।
लेकर मशाल निकले हैं अपने पड़ाव से,
आवाज आ रही है सुनो गाँव-गाँव से।"

डॉ. साहब ने इसीलिए तो समाज के लोगों को जागने का आह्‌वान किया ठीक उसी तरह जिस तरह देवराज 'तेवरी' में खतरों के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं-

"आज हम सो जाएँगे यदि तान कर चादर
रोज ओढ़े जाएँगे फिर मानकर चादर।"

उनका मानना था कि जो इस समय समाज निर्माण के लिए जूझेंगे वे ही भविष्य में सम्मान पाएँगे। जो अपने क्षुद्र स्वार्थ से चिपके रहेंगे, वे कायर कहे जाएँगे। समाज व देश कायरों का नहीं, वीरों का होता है। समाज और धरती को अपना कहने का अधिकार समाज के सजग प्रहरी और वीरों के पास संरक्षित होता है। डॉ. साहब ने पूरे समाज के लोगों को ऐसी प्रेरणा देकर समाजोन्मुख बनाया। सामाजिक सरोकारों से जुड़े लोगों का यही परम कर्त्तव्य भी है। मानसिकता का निर्माण किए बिना समाज नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि उस दशा में सामाजिक मूल्यों के प्रति सार्थक प्रतिबद्धता पैदा नहीं की जा सकती। डॉ. साहब ने मूल प्रेरणा यह दी है कि-

"जो घरों को छोड़कर अब अँधेरों से लड़ेंगे,
वे बनेंगे बाहुबली, महावीर होंगे एक दिन।"

(बृजपात सिंह 'शौरमी', संवाद)

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि त्याग और बलिदान जैसे

परंपरागत मूल्य समाज व राष्ट्र-निर्माण की पहली सीढ़ी है। व्यक्ति जिस समाज व राष्ट्र में रहता है, वह उसका अंश होता है; और समाज के लिए हर प्रकार का कष्ट उठाना उसका कर्त्तव्य बनता है। त्याग, तपस्या और श्रेष्ठ चरित्र से व्यक्ति अपने समाज व देश को महान बनाता है। यदि व्यक्ति में ये गुण नहीं हैं तो भौगोलिक और भौतिक उपलब्धियाँ समाज व देश नहीं बना पातीं। डॉ. साहब इस मान्यता के तहत स्वयं भी उसका पालन करते थे। उनका मानना था कि कोई भी समाज व देश नागरिकों के चरित्रबल और शस्त्रबल के बिना जीवित नहीं रह सकता क्योंकि जहाँ चरित्रबल संस्कृति और समाज की अभिवृद्धि करता है वहीं शस्त्रबल आतंरिक शांति और सीमाओं की रक्षा का भार वहन करता है। एक स्पष्ट सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए निष्कपट और प्रसन्न समाज के लिए चरित्रबल की आवश्यकता है क्योंकि चरित्रवान व्यक्ति ही समाज में कैंसर की तरह व्याप्त भ्रष्टाचार, दुराचार, राजनैतिक भँवर, इनके बीच में जनता की दयनीय दशा, इससे बढ़कर मनुष्य के छल-कपट और अभिनय तथा विषम परिस्थितियों का मुकाबला कर सकता है।

सच तो यह है कि किसी भी समाज व राष्ट्र की संपन्नता का आधार तो वहाँ के नागरिकों का राष्ट्रीय चरित्र ही होता है। अगर हिटलर राष्ट्रीयता (उग्र ही सही) से प्रेरित न होता तो क्या वह अपने वतन जर्मनी के अपमान की कालिमा को धोने के प्रयासों और मित्र राष्ट्रों को चुनौती देने की स्थिति में पहुँच सकता था? यथार्थ तो यह है कि चाहे हम किसान हों, मजदूर हों, व्यवसायी हों, अधिवक्ता अथवा अभियंता हों, कर्मचारी अथवा अधिकारी हों, कलाकार या पत्रकार हों, लेखक या साहित्यकार हों, विद्यार्थी या अध्यापक हों, जब तक हम सभी निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर सामाजिक संलग्नता और राष्ट्रीयता की भावनाओं को अंतर्मन में धारण करके कर्म नहीं करेंगे, तबतक समाज व राष्ट्र का विकास कतई संभव नहीं। वस्तुतः समाज व राष्ट्र की प्रगति का आधार हमारी नीयत, प्रवृति और कार्यशैली ही होती है। यदि सामाजिक व राष्ट्रीय हितों की हम उपेक्षा कर केवल स्वयं के लाभ पर ही ध्यान केंद्रीत करेंगे, असामाजिक तौर-तरीके अपनाएँगे, धन को हड़पने की चेष्टा करेंगे तो ऐसे में

स्वाभाविक है कि समाज व राष्ट्र की प्रगति का मार्ग अवरूद्ध होगा ही। यही वजह है कि डॉ. मोहन सिंह ने कभी भी सामाजिक व राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा नहीं की और आजीवन सामाजिक सरोकारों से सराबोर रहे।

देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के विचारों को मोहन बाबू ने अपने जीवन में आत्मसात किया। राजेन्द्र बाबू का मानना था-"राजनीति का अपना पुरस्कार है। यह हमें अखबार की सुर्खियों में रखती है तथा आदर सम्मान दिलाती है। किंतु समाज सेवा का पुरस्कार इससे कहीं ऊँचा है क्योंकि इससे समाज को प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। सामाजिक उन्नति ही समाज-सेवी का बहुत बड़ा पुरस्कार है।" मोहन बाबू ने देशरत्न के इस विचार को अपनाकर सामाजिक उन्नति को ही सबसे बड़ा पुरस्कार माना। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो डॉ. साहब बिहार की एक उत्तम विभूति थे-उस बिहार की, जिसने बुद्ध को आत्मबोध दिया था, जहाँ अशोक ने चक्रवर्ती-साम्राज्य की स्थापना की थी, जहाँ मैथिल-कोकिल विद्यापति ने हिंदी-काव्य-कुँज को मुखरित किया था, जहाँ शेरशाह की शमसीर चमकी थी और मोहन बाबू इसी शेरशाह की भूमि सासाराम की उपज थे।वे हमेशा कहा करते थे कि जीने को तो पशु भी जीवन जीते हैं और अपना भरण-पोषण कर लेते हैं, पर पशु और इंसान में यही मौलिक भिन्नता है कि पशु भावनाओं से रहित होता है, पर इंसान भावनाओं से आप्लावित। वैसे भी जिस समाज में हम जन्में हैं, जिस राष्ट्र की मिट्टी में हम पल्लवित-पुष्पित हुए हैं और जहाँ का वायु, पानी और अन्न ग्रहण कर रहे हैं, उसके प्रति कृतज्ञ होना, उसकी प्रगति हेतु नैतिक दायित्व बन जाता है। इस नैतिक दायित्व अथवा कर्तव्य-बोध का हमें कदापि विस्मरण नहीं करना चाहिए। डॉ. साहब ने आजीवन इस कर्त्तव्य-बोध को निभाया और अपने कार्यकलापों से समाज के लोगों को प्रेरित किया। बिहार के लोग डॉ. साहब के सामाजिक योगदान को याद रखेंगे जिनकी दूरदर्शिता, साहस और समाज व राष्ट्र हितों के प्रति प्रतिबद्धता ने समाज क्या पूरे देश में एक प्रतिमान स्थापित किया।

ऊँच-नीच को समाप्त करने का संकल्पः

हम इस बात से पूर्णतः अवगत हैं कि भारतीय संविधान छुआछूत

को एक दंडनीय अपराध मानता है, किंतु मात्र कानून बना देने से समस्या का समाधान नहीं निकलता। यह भावना तो लोगों का अंग बन चुकी है और छुआछूत तथा ऊँच-नीच की भावना की यह व्याधि न केवल ग्रामीण अथवा अनपढ़ समाज को ही ग्रसित किये है, बल्कि पढ़े-लिखे और आधुनिक समझे जानेवाले समाज में भी व्याप्त है। डॉ. मोहन सिंह का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने इसे समाप्त करने का संकल्प लिया था। आखिर तभी तो उनसे समाज के सभी वर्गों एवं तबकों से गहरा लगाव था।

आपको याद होगा सन् 1932 की राउंड टेबुल कांफ्रेंस के बाद ब्रिटिश-सरकार ने भारत की बहुत उलझी हुई धर्म और जाति की समस्या को ध्यान में रख जिस 'काम्यूनल अवार्ड' की घोषणा की थी, उसमें हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों के साथ ही दलितों को भी एक अलग वर्ग माना गया था। गाँधी जी ने इस अवार्ड का विरोध करते हुए कहा था कि इससे तो इस वर्ग के लोग सदा-सदा के लिए हिंदू समाज से अलग हो जाएँगे। गाँधी जी उस समय यरवदा जेल में थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावित अवार्ड के विरोध में वहाँ आमरण अनशन कर दिया था हॉलांकि डॉ. भीमराव अंबेडकर दलितों को मिलनेवाली पृथक निर्वाचन प्रणाली (कॉम्यूनल अवार्ड) से उन्हें अलग प्राप्त अस्तित्व चाहते थे, फिर भी गाँधीजी के जीवन की रक्षा के लिए अंबेडकर ने दलितों के लिए अलग निर्वाचन प्रणाली की माँग छोड़ दी। उन्हें दलितों को अलग से आरक्षण तथा दलितों के प्रति किए जानेवाले भेदभाव को पूरी तरह समाप्त करने का आश्वासन दिया गया जिसके लिए विशेष अभियान चलाने की बात की गई, किंतु बात अधिक समय तक नहीं चली। हजारों साल से छुआछूत की भावना से ग्रस्त समाज की मानसिकता में विशेष अंतर नहीं आया। उनके साथ होनेवाला भेदभाव भी उसी तरह चलता रहा। डॉ. साहब के मन पर इसका प्रभाव पड़ा और छुआछूत की इस भावना को समाप्त करने का उन्होंने संकल्प लिया। प्राकृतिक आपदा एवं संकट के समय उन्होंने व्यक्ति व समूहों को मिलकर उसका सामना करने की भावना पैदा की और उन्होंने पशुओं से पाठ लेने की बात कही। इन पंक्तियों को लिखते वक्त मुझे

कविवर बिहारी का कई सदी पहले लिखा एक दोहा याद आ रहा है जिसका अर्थ है-"भयंकर गर्मी के कारण वृक्ष की शीतल छाया में एक-दूसरे को अपना शत्रु समझने वाले साँप और मोर तथा हिरण और बाघ अपनी शत्रुता भूलकर एक साथ आ खड़े हुए हैं। इस संकट ने तो इस संसार को तपोवन बना दिया है, जहाँ कोई किसी से बैर नहीं करता।" कितना विचित्र है कि समान आपदा के समय पशु जगत के प्राणी तो कुछ समय के लिए अपनी शत्रुता भूल जाते हैं, किंतु मनुष्य ऐसा नहीं कर पाता। डॉ. मोहन सिंह इस दोहे से काफी प्रभावित हुए और मनुष्य और मनुष्य के बीच की दीवारों को खत्म करने का आह्वान किया था। सामूहिक भोज के समय समाज के सभी वर्गों को एक साथ भोजन करने की बात कही और स्वयं भी उसका पालन किया, किंतु भेदभाव की यह भावना आज भी बरकरार है।

मुझे अच्छी तरह याद है कुछ वर्ष पूर्व गुजरात में आया समुद्री भूकंप बड़े-बड़े पक्के घरों को तोड़ने में सफल हो गया, लेकिन वह मनुष्य और मनुष्य के बीच की दीवारों को तोड़ने में कामयाब नहीं हुआ। उन दिनों सामूहिक भोज में ऊँची जाति के लोगों ने दलित जातियों के साथ बैठकर भोजन करने से इनकार कर दिया था और अपने लिए अलग व्यवस्था करने का आग्रह किया था। ठीक उसी प्रकार अभी-अभी सुनामी ने जो कहर बरपाया उस समय भी तमिलनाडु से भी कुछ ऐसा ही समाचार आया जिसके अनुसार दलितों के पास राहत सामग्री पहुँचाने में उसी प्रकार का भेदभाव बरता गया जो इस समाज की मानसिकता में गहरे तक जड़ें जमाए बैठा है। यह इस बात का परिचायक है कि चार वर्णों तथा अनेक उपजातियों में बँटे भारतीय समाज में ऊँच-नीच की भावना आज भी व्याप्त है जिसे जड़ से मिटाने की आज आवश्यकता है और जिसकी कल्पना डॉ. मोहन सिंह ने की थी।

छुआछूत तो हिंदू समाज का एक पुराना कोढ़ है, जो कबीर के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा था और जिसका कबीर ने घोर विरोध किया था। वह कोढ़ आज भी नष्ट नहीं हुआ है, ऐसा कहा जा

सकता है। डॉ. मोहन सिंह परंपरागत अँधविश्वासों, प्रथाओं का मलोच्छेदन कर धर्म, दर्शन और समाज में बुद्धिवादी समानता के पक्षधर थे। उनका मानना था कि मौलिक विचारों को आधार मानकर यदि हम आज भी चलें, तो समाज का उद्धार हो सकता है। इसलिए समाज में व्याप्त बुराईयों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडंबरों, उपासना विषयक मिथ्याचारों और ऊँच-नीच के भेदभावों का खंडन करते समय उनमें आस्था की दृढ़ता थी। वह सांस्कृतिक एकता के प्रबल समर्थक थे। समाज में रहकर डॉ. साहब के लिए कोई ऊँचा या कोई नीचा नहीं था। अपनी सार्वजनिक भावना के कारण ही वे समाज में विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर सके।

सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण :

सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक डॉ. साहब ने विभिन्न सामाजिक संगठनों के माध्यम से आदमी से आदमी को जोड़ने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। पटना के मुसल्लहपुर स्थित सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण कुर्मी हितकारिणी न्यास के अध्यक्ष की हैसियत से किये जा रहे उनके प्रयास आदमी को आदमी से जोड़ने में सहायक सिद्ध हुये हैं। आये दिन विभिन्न सामयिक विषयों पर गोष्ठी तथा परिचर्चा, भारत के कोने-कोने से पाटलिपुत्र की इस सोंधी धरती पर पधारे समाज के जाने-माने हस्ताक्षरों का आतिथ्य-सत्कार तथा नवनिर्वाचित विधायकों एवं सांसदों का हार्दिक अभिनन्दन कर इस छात्रावास ने अपनी गौरवमयी परंपरा का निर्वाह किया है भले ही उन राजनीतिज्ञों के कान पर समाज की समस्याओं के निदान हेतु जूँ तक नहीं रेंगे हो चाहे छात्रावासियों ने उनके गद्दीनसीन होने के लिए अपने खून का एक-एक कतरा कूर्बान किया हो। कुर्सी मिली नहीं कि सिद्धांत के मुकूट उनके माथे पर। किंतु डॉ. साहब पर इसका कोई असर नहीं, उनकी मानसिकता में कोई बदलाव नहीं, क्योंकि अपने उद्येश्यों में अटूट विश्वास जो था उनका। इसी विश्वास के बल पर अनवरत लगे रहे

छात्रावास की एक मंजिल के बाद दूसरी मंजिल के निर्माण में। उनका यही आत्मविश्वास समाज के प्रभावी आंदोलन का मूलमंत्र है। ऐसा आंदोलन जो कि हमारी सामाजिक संभावनाओं की सीमा रेखा बदल देगा, क्योंकि उनके कदमों पर चलने का हमने संकल्प जो ले रखा है तथा हाथ न खींचने की कसमें जो खाईं हैं।

सभाज के प्रति उनका दर्द क्या कुछ नहीं करा देता। तभी तो 78 साल की इस उम्र में भी कुछ-न-कुछ कर गुजरने की तमन्ना लिये बैठे रहे, कल की पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य की कामना संजोये। आखिर इस उम्र में भी सभा तथा छात्रावास के कार्यों में इतनी सर्तकता, कर्मठता तथा बेचैनी के कारण क्या हैं? यह पूछने पर उन्होंने कहा था- सामाजिक कार्यों के मूर्त रूप में परिणत करने का बस एक शौक है, एक लालसा है दिल में। यह पूछने पर कि आपकी संस्थाओं के पदाधिकारी एवं सदस्य आपके साथ कैसा व्यवहार करते हैं तो मुस्कराते हुये उन्होंने कहा था, 'वे सब-के-सब मेरी मदद करने को तत्पर रहते हैं।'

परिश्रम करना प्रत्येक मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है। इसी के द्वारा सभी कर्मों को मान्यता दी जाती है। मानव अपने जीवन के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये जो भी कर्म करता है उसमें उसका 'परिश्रम' ही उस कर्म को गति प्रदान करता है एवं उसे लक्ष्य तक पहुँचाता है।

जो मानव सार्वभौमिक भाव से कर्म करता है वही चिरकाल तक प्रसिद्धि स्थापित करता है। डॉ. साहब के कार्य भी इसी वर्ग में आते हैं। सार्वभौमिक भाव से अपने कर्म में तल्लीन यही उनकी विशेषता रही जो उन्हें आनेवाले दिनों में भी प्रसिद्धि स्थापित करेगी। सार्वभौमिक भाव या परमार्थ भाव से किया गया कार्य ही उन्हें मंजिल तक पहुँचायेगा।

श्री जनमेजय मिश्र ने अपने लेख में कहा है, 'धैर्य मानव कर्म को स्थिरता प्रदान करता है। इसके बिना मानव कर्म में बहुत अधिक गलतियाँ हो सकती हैं। अत: प्रत्येक प्राणी को, धर्म को कर्म का अभिन्न अंग समझना चाहिए तथा उसी आधार पर कर्म करते रहना चाहिए तभी वह सफलता को सहर्ष स्वीकार करने का सच्चा अधिकारी माना जाता है।" इस

दृष्टि से डॉ. साहब के अंदर जब हम झाँककर देखते हैं तो वे खरे उतरते हैं। धैर्य को तो मानो उन्होंने अंगीकार कर लिया था। इसीलिये अपने कर्म पर उनका विश्वास अटूट था, क्योंकि यदि कर्म में ही विश्वास न हुआ तो वह निरंतर कर्म की स्थिति को बदलता रहेगा जिससे लक्ष्य प्राप्ति में उसे और भी अधिक विलंब तथा अनिश्चितता का सामना करना पड़ेगा। कर्म में विश्वास रखना ही उनकी सफलता का एकमात्र मंत्र था।

अभी हम जिस वातावरण में जी रहे हैं वह अजीब व्याकुलता से परिपूर्ण है। इसका प्रमुख कारण है वातावरण तथा भौतिक प्रगति को सर्वोच्च सत्ता समझना जो उसकी भारी भूल है और इसी भूल के फलस्वरूप हर प्राणी दुखी एवं विनाश जैसे प्रादुर्भाव का स्वागत करने को विवश हो रहा है। डॉ. साहब ने हर हमेशा इस स्थिति से बचने का प्रयास किया। अच्छे कर्मों का अच्छा फल यही उनकी सफलता का मूलमंत्र रहा और सच भी यही है कि कर्म ही ऐसा है जो सभी तत्त्वों का प्रधान है। डॉ. साहब को अपने उत्तरदायित्व का पूरा ज्ञान था और आसपास के वातावरण को पूरा स्वच्छ रख सकें इसके लिए उनका सतत प्रयास रहा। इन्हीं गुणों के लिये वे हमेशा याद किये जायेंगे। पटना के मुसल्लहपुर स्थित सरदार पटेल छात्रावास के निर्माण में उनके द्वारा किये जा रहे अविस्मरणीय योगदान को उनके आलोचकों ने भी सराहा। जहाँ आज के युग में पिता अपने पुत्र पर नियंत्रण रखने में अपने को असमर्थ पाता है वहीं डॉ. साहब ने छात्रावासियों को अनुशासित तथा नियंत्रित करके अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। हाँ, इच्छा है कि डॉ. साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को कुछ ऐसे ढंग से पेश कर पाता जो डॉ. साहब को न जाननेवाले के लिए एक परिचय कोश बन सकता किंतु यह काम इतना आसान है भी नहीं जितना मैं अपनी अपेक्षा में ढाल रहा हूँ। मेरा प्रयास यह है कि उनकी सच्ची तस्वीर खींच सकने में बहुत नजदीक आ सकूँ।

औरों की जीवनी के प्रकाशन के लिये बहुत कुछ सामग्रियाँ लिखित भी मिल जाती हैं पर डॉ. साहब के साथ तो वैसी बात है नहीं। उनके विषय में जो कुछ भी कह पाऊँ यह वर्षों-वर्षों से उनके सानिन्ध्य में रहने का या तो प्रतिफल है या फिर उनके नेतृत्व में चल रहे संगठनों

में अपने योगदान के चलते। यह पुस्तक लिखते वक्त मेरे पास न तो कोई नोट्स थे, न सामग्री, न पत्र और न कोई किताब।

डॉ. साहब की अहमियत सिर्फ इसलिए हमारे जेहन में नहीं है कि वे सरल स्वभाव, सहनशीलता तथा कर्मठता के प्रतिमूर्ति हैं, बल्कि इसलिये भी कि एक अच्छे व्यक्तित्व में जिन गुणों को हम देखना पसंद करते हैं वे सब-के-सब उनमें मौजूद थे।

जिस लोकप्रियता के लिये लोग अनेकों तरह के ढोंग रचाते हैं,भौंड़ा प्रयास करते हैं, अपनी ईमानदारी, सच्चाई तथा चेतना का ढोल पीटते हैं, कथनी और करनी में कोई मेल नहीं रहने पर भी उसका नाटक करने से बाज नहीं आते, उसे डॉ. साहब ने बड़ी सहजता से प्राप्त कर आम आदमी के दिल में जगह बना ली है। आज समाज का हर छोटा-बड़ा आदमी उनकी ईमानदारी तथा कर्मठता की दाद दिये बिना नहीं रह पाता, मैं तो खैर, उनका कायल हूँ। उनके सुलझे विचार भला किसको नहीं भायेगें? आपसी विश्वास और मेलजोल बढ़ाने की उनकी बात भला किसको नहीं जंचेगी?

डॉ. मोहन सिंह की ऊर्ध्वगति कभी रुकी नहीं। शीघ्र ही वह बिहार की राजधानी पाटलीपुत्र पहुँच गए और यहाँ भी अपने आकर्षक करिश्माती व्यक्तित्व से पटना के बौद्धिक एवं चिकित्सक वर्ग को मंत्रमुग्ध कर दिया। ऐसा रूप, ऐसी वाणी, शक्ल-अक्ल का सोने-सुहागे जैसा संगम दुर्लभ ही होता है। यह स्वाभाविक है कि ऐसे हर दिलअजीज और हरपललजीज इंसान ने जब पटना के चक मुसल्लहपुर में लौह पुरुष सरदार पटेल की स्मृति के रूप में सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण प्रारंभ किया तो पूरे समाज में यह चर्चित हो गया और सार्वजनिक बहस को गरमाने लगा। डॉ. साहब का जादू पटना एवं बिहारवासियों के सिर पर जबरदस्त ढंग से चढ़कर बोला जिसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने उसके भवन निर्माण को हाथों-हाथ लिया और आज वह सरदार पटेल स्मारक के साथ-साथ विद्यार्थियों का एक भव्य मंदिर बन गया है। अपने रचनात्मक कार्यों एवं चिकित्सा के क्षेत्र में अवदान के चलते डॉ. साहब ने अपने आपको देशवासियों की नजर में काफी ऊँचा उठाया। ऐसे वक्त मुझे स्मरण

हो रहा है इकबाल का यह शेर–

'खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तक़दीर से पहले खुदा बंदे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है?'

(अर्थात तू अपने आपको इस प्रकार ऊँचा उठा कि ईश्वर तुम्हारा भाग्य लिखने से पूर्व तुम्हारी राय ले।)

भारतवासियों की स्थिति में सुधार के लिए डॉ. साहब आजीवन प्रयासरत रहे। कभी नौजवानों तथा विद्यार्थियों को संबोधित किया तो कभी बुद्धिजीवियों और चिकित्सकों को। इन संबोधनों में उन्होंने जनता को जाग्रत करने तथा राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ाने की दिशा में अपने विचार प्रस्तुत किए।

कुल मिलाकर मैं कहना चाहूँगा कि डॉ. मोहन सिंह एक धधकती ज्वाला थे और ओस की बूँद भी, क्रांति के संवाहक थे और पायल की झंकार भी। वे ज्ञान थे, वे प्रज्ञा थे, वे बारूद की गँध थे और चमेली की महक भी। यह निष्कर्ष मैंने निकाला है उनके जीवन काल और सरगर्मियों से गुजरने के बाद और आश्चर्य होता है कि इन सारे मोर्चों पर वे कैसे जुट जाते थे। डॉ. साहब समाज के एक ऐसे मुसाफिर थे जो अपने दिल का पराग जलाए सबके लिये राह तराश रहा हो। उनके कार्यकलाप की कितनी सड़कें थीं, कितनी गलियाँ, कितने मोड़ थे और सब रास्ते इंसानियत और सच्चाई की तरफ जाते थे। वह आत्मसम्मानी और प्रगतिशील इंसान जिनमें सादगी, शुचिता और क्रांतिकारिता थी, के लिये जैसे कोई ग़ज़लकार गा रहा हो–

आपकी याद आती रही रात भर
चश्मे-नम मुस्कराती रही रात भर।

जिंदगी के दुःख-सुख और शिकस्ता लोगों की बेचैनियों का जुलूस उनके भीतर होता था–किसी जज्बे की तरह। दरअसल बात यह है कि उनमें सामजिक परिवर्तन कर डालने का सपना बेचनेवालों को उन्होंने निकट से देखा-सुना था। उनके आस-पास पसरे तमाम नकाबपोश लोगों को पहचानना और उनसे सावधान रहने की सलाह देना ही डॉ. साहब का समाज धर्म था। डॉ. साहब चाहते थे कि आम लोग नकली नेताओं, छद्म विचारकों, समाजसेवियों से सावधान रहें। यही आज के समय का समाजकर्म

हो सकता है। समाज के विभिन्न तबकों और उनकी स्थितियों को लेकर डॉ. मोहन सिंह ने जिस तरह हमारे जैसे अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं का सहारा लिया था, वह अपने आप में अद्‌भुत है। इस जीवनी में उनकी अविस्मरणीय जिंदगी का तानाबाना है, उनके कर्त्तव्यों की दिलचस्प दास्तान है जिसे मैंने अपनी विशिष्ट शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मुझे विश्वास है पाठकों को यह पुस्तक एक नई ताजगी का अहसास करायेगी और वर्तमान समय में डॉ. साहब की प्रासंगिकता बनी रहेगी तथा उनका ज्योति पूँज जनमानस के हृदय को आलोकित करता रहेगा। मैं इस मायने में परम सौभाग्यशाली हूँ कि कभी उनकी आत्मीयता से वंचित नहीं रहा। उनका प्रेम, आर्शीवाद, शुभेच्छाएँ सदैव मेरे साथ रहीं। ऐसा बहुत कुछ है जो बाँटने को है, पर अभी उनके कृतित्व को देखने का वक्त है।

डॉ. मोहन सिंह ने अपने चेहरे पर कुछ प्रसन्नता कुछ उदासी के साथ एक ऐसे व्यक्ति की छाप बनाई जो पढ़ा-लिखा, नेकनीयत और बेहद शरीफ इंसान थे, आम आदमी के दु:ख-दर्द से जुड़े थे, भले ही उसे लिये ठोस कुछ न कर पाये। हाँ, उनकी सदाशयता और स्वयं को अतीत का एक उपकरण मानने की विनम्रता डॉ. साहब को आज के उन समाजसेवियों एवं चिकित्सकों से अलग करती है जो एक अतिसाधारण कर्म कर भी इतिहास बनाना चाहते हैं। मेरे ख्याल से डॉ. साहब ने जिस सूझबूझ से अपनी सकारात्मक भूमिका निभाई, वह पूरे समाज के लिये गर्व की बात है, क्योंकि वे सार्वजनिक आइने पर खरे उतरे।

संसार में फूल और काँटे दोनों ही हैं। फूल के सौरभ और सौंदर्य की कालज और देशज सीमाएँ हैं, अल्प और लघु। परंतु काँटों का अनंत विस्तार है, वे अनेक रूपी हैं; उनको किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। जीवन-यात्रा के गंतव्य स्थान तक पहुँचने के लिये इनसे सावधान और सचेत रहना जरूरी है। इनमें उलझ कर बीच में ही रूक जाना, दिग्भ्रमित हो जाना, हार कर बैठ जाना अथवा संतुलन खो देना मनुष्य की कमजोरी है। इसी कमजोरी को उसपर विजय पाने का, सतत् संघर्षशील जीवन में लक्ष्य तक पहुँचने का सरल और अनुभूत उपाय डॉ. मोहन सिंह जी ने

बताया। वे कहते थे: जो अपना कर्त्तव्य पालन करता है, ईमान की कमाई खाता है, सत्य को प्रमाण मानता है, अत्यंत विनम्र और क्षमाशील है उसका ही जीवन सफल है और वही जीने की विधि जानता है। डॉ. साहब हमेशा कहा करते थे कि व्यक्ति का दोहरा दायित्व है-अपने प्रति तथा समाज एवं देश के प्रति। अत: जीवन की विधि के अंतर्गत आत्मोत्थान के साथ लोकसंग्रह और लोकमंगलकारी कार्यों की गणना है। डॉ. साहब किसी-न-किसी रूप में निरंतर लोकमंगल के कार्य करते रहे। उनके अनुसार, जो जैसा और जितना दे सकता है, उनको वैसा और उतना निष्काम भाव से अवश्य देना चाहिये।

कहनेवाला जबतक किसी काम को खुद करके न दिखा दे; तब तक उसके कथन का कोई मूल्य नहीं है। स्थायी असर भी उसी की बात का होता है जो कथनी को करनी में बदल कर दिखा देता है। मोहन बाबू का क्षेत्र पूर्ण रूप से कर्म और समाज ही था। आज की तरह आर्थिक क्षेत्र में उनकी रुचि नहीं थी।

हम कह सकते हैं कि डॉ. मोहन सिंह ने समूचा जीवन जीया-पश्चिमी अर्थ में नहीं, भारतीय अर्थ में उनका जीवन एक सच्चे समाज सेवी तथा कर्मयोगी चिकित्सक का जीवन था, जो अपनी सीमा और शक्ति दोनों से भली-भाँति परिचित था। उनके बारे में संभवत: अद्‌भुत बात यह है कि व्यक्ति तथा चिकित्सक के रूप में उन्होंने सदैव आत्म सजगता की बड़ी-से-बड़ी ऊँचाइयों को छूने की कोशिश की। वह देशभक्त थे, नैतिकवादी थे और सामाजिक चिंतक थे। उन्होंने अपने विगत से प्राप्त सामूहिक जीवन की समृद्ध परंपरा का आदर्श रखा है।

डॉ. साहब आज हमारे बीच नहीं हैं, पर उनके विचार और कर्म जीवित हैं, आगे भी जीवित रहेंगे और उन्हीं से नित्य-नए अंकुर फूटेंगे।

गीता में कृष्ण ने स्थित-प्रज्ञ महापुरुषों का लक्षण बतलाते हुये कहा है-

'दु:खेषु अनुद्विग्न मना: सुखे विगत स्पृह:
वीत-राग-भय-क्रोध:स्थित धीर मुनिर उच्यते।'

जब-जब मोहन बाबू की याद आती है यह श्लोक मेरे मानस पटल पर उतर आता है। मुश्किल-से-मुश्किल उद्वेगकारी और जटिलतापूर्ण वक्तों में भी मैंने उनको कभी उत्तेजित, चिंतित और उद्वेगग्रस्त होते नहीं देखा।

वर्तमान विषम परिस्थिति में जब लोग आपाधापी की जिंदगी जी रहे हैं मोहन बाबू के विचार के आलोक में लोग उज्ज्वल भविष्य की रेखायें देख सकते हैं। भारतीय संस्कृति के हिमायती मोहन बाबू के विचारों का अनुपालन कर उनके जीवन के त्याग और तपस्या का अनुकरण कर हम सच्चे देशभक्त बन सकते हैं। रचनात्मक दृष्टिकोण के सारग्राही व्यक्ति डॉ. साहब के व्यक्तित्व को अंगीकार कर मनुष्यत्व प्राप्त करने तथा राष्ट्र को सबल बनाने के लिये कृत-संकल्प होने की आज आवश्यकता है।

आज की नई पीढ़ी दिशाहीन है। मोहन बाबू के विचारों से प्रेरणा प्राप्त कर उनके सोच को रचनात्मक दिशा दी जा सकती है, उनमें आत्मसम्मान और आत्मविश्वास पैदा किया जा सकता है, तभी वे बदलते नये समाज में जिम्मेदारी के साथ अपनी भूमिका निभा सकेंगे। व्यक्तिगत, समाजगत तथा राष्ट्रगत प्रगति में सहभागी बनाने हेतु समाज की युवाशक्ति को छात्रावास के माध्यम से एक नई दिशा प्रदान करने के लिये डॉ. साहब कृतसंकल्प थे।

समाज सेवा तथा देशभक्ति की भावना डॉ. साहब में बचपन से ही थी। बड़े होने पर वे दूरद्रष्टा सिद्ध हुये। उन्हें लगा कि किसी भी देश तथा समाज की प्रगति सामूहिक शिक्षा से ही लाई जा सकती है। बस इसी भावना के तहत उन्होंने अपना जीवन पटना में सरदार पटेल छात्रावास के निर्माण के लिये समर्पित कर दिया। महज पाँच-सात कमरों का पूर्व में निर्मित बिहार प्रान्तीय अवधिया होस्टल (बी.पी.ए. होस्टल) का नाम बदलकर उन्होंने भारत के महान शिल्पी लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल के नाम पर 300 विद्यार्थियों के लिये सरदार पटेल छात्रावास के निर्माण में पिल कर पड़ गये क्योंकि सरदार के विचारों एवं आदर्शों में उन्हें अटूट विश्वास था। अपने इस प्रयास में उन्हें काफी सफलता मिली। आज

छात्रावास का तीन मंजिला भवन उनके महान कार्य और मिशन का जीवंत स्मारक है जिसमें अभी विभिन्न महाविद्यालयों के छात्र रहकर अध्ययन में तल्लीन हैं। विदित हो इस छात्रावास में गाँव के निर्धन तथा योग्य छात्रों के ही रहने की व्यवस्था है। वे समाज के शाखावाद की मान्यताओं से सदैव ऊपर रहे। यही कारण है कि उन छात्रावास में सभी के लिये द्वार खुला है। वे हमेशा समानता की वकालत करते हैं। उनके इस प्रयास से इस छात्रावास के छात्र देश के उत्तम नागरिक बनकर निकले।

इस छात्रावास से अखिल भारतीय तथा राज्य स्तर की प्रतियोगिता परीक्षाओं में प्रतिवर्ष 15 से 20 छात्र सफलता पाकर अच्छे-अच्छे पदों को सुशोभित कर रहे हैं। इस छात्रावास ने अपने छात्रों में श्रम की गरिमा, आत्मविश्वास और मिल जुलकर रहने की भावना विकसित की है।

सुप्रसिद्ध चिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा स्वतंत्रता सेनानी डॉ. मोहन सिंह जी का यह कृतित्व उन्हें अमरत्व प्रदान करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। किसी व्यक्ति की पहचान उसके कार्यों के द्वारा ही होती है। सरदार पटेल छात्रावास के निर्माण में डॉ. साहब की समाज के प्रति गहरी आस्था तथा विश्वास को सहज रूप में देखा जा सकता है। सामाजिक उपलब्धि के रूप में उनके व्यक्तित्व का निखार हमारे सामने आता है। आज के युग में जहाँ समर्पित कार्यकर्त्ताओं की बेहद कमी हो गई है, कोई किसी सामाजिक कार्यों में हाथ बंटाना नहीं चाहता, डॉ. साहब का यह छात्रावास और उनका यह कार्य ऐतिहासिक उपलब्धि है। पटने जैसी नगरी में, जो महानगरी की पंक्ति में आने को आतुर है, हजारों-हजार मकान के निर्माण के बावजूद भी गरीब तथा मेधावी छात्र-छात्राओं के छात्रावास का अभाव सहज ही अनुभव किया जा सकता है। डॉ. साहब का ध्यान इस जटिल समस्या की ओर गया तथा निकल पड़े अपनी झोली को लेकर समाज की ओर। सेवा का व्रत लिये डॉ. साहब ने इसे कार्य रूप में परिणत कर लोगों के सामने इसे खड़ा कर दिया जहाँ आज सैकड़ों समाज के गरीब किंतु मेधावी छात्र राहत की सांस ले रहे हैं। डॉ. साहब उसकी तीन मंजिली इमारत से ही संतुष्ट नहीं हुए बल्कि उसके विस्तार के लिये भी प्रयत्नशील

रहे। कहने के लिये डॉ. साहब उसके अध्यक्ष थे, लेकिन वास्तविकता यह है कि वही छात्रावास थे और छात्रावास ही डॉ. साहब। दोनों एकाकार थे। आज के रचनात्मक कार्यकर्त्ता का संकट विश्वास स्थापित करना और इसके लिये सत्यनिष्ट लोगों का चयन है। डॉ. साहब के कार्यों को केंद्रित कर छात्रावास के साये में हमने देखा, इसका अर्थ यह नहीं है कि वहीं तक इनका कृतित्व सीमित है, वरन् उनकी इच्छानुसार बिहार के प्रत्येक जिले में छात्र/छात्राओं के लिये छात्रावास-निर्माण की परियोजना भी उसी की कड़ी थी। उनके जीवन की सुंगधी ओरों को भी अधिक-से-अधिक मिले इसके लिये संगठन पदाधिकारी तथा जिला शाखाएँ सतत् क्रियाशील हैं। पटना के खाजपुरा में महिला पटेल छात्रावास की स्थापना उसी की एक कड़ी है।

सामान्य परिस्थितियों एवं बाधाओं से ऊपर उठते हुए व्यक्ति जब सर्वव्यापी लोकप्रियता प्राप्त करने लगता है तब सार्वजनिक हितों के प्रति उसकी जवाबदेही उसे 'व्यक्ति' से 'संस्था' बना देती है। उस स्थिति में वह परिवार-पड़ोस से अलग होते हुए एक बृहत्तर समाज को अपना परिवार-पड़ोस मानने लगता है और उसका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। शिक्षा के प्रति अगाध श्रद्धा रखनेवाले डॉ. मोहन सिंह का दृष्टिकोण भी कुछ ऐसा ही व्यापक हो गया था। पटना के मुसल्लहपुर में सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण कर न केवल वे लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के आदर्शों एवं विचारों को प्रत्येक विद्यार्थी तक पहुँचाना चाहते थे, बल्कि उनके सकारात्मक पक्ष को उजागर कर समाज, राज्य व राष्ट्र के हित की ओर उन्मुख करना चाहते थे। उनका उद्येश्य था जिन सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक दृष्टि से समाज शोषित, पीड़ित होने के लिए अभिशप्त रहा है और जिस जातीयता एवं सांस्कृतिक प्रदूषण का वह शिकार है उन तत्त्वों के खिलाफ संघर्ष करना तथा उसका उन्मूलन करना। जन सेवा के मूर्तिमान रूप डॉ. साहब को छात्रावास-निर्माण के कोई दो दशक तक वांछित-अपेक्षित ध्येय की पूर्ति हुई पर बाद के दिनों में उसपर निराशा के बादल छाने लगे। जैसे-जैसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया छात्रावास की स्थिति और उसकी

लोकप्रियता पर भी आँच आने लगी। छात्रावास निर्माण के पीछे डॉ. साहब का विद्यानुराग भी काम कर रहा था। प्रखर विद्वता सदैव उनकी जिह्वा पर विराजती थी। उनकी तेजोदीप्त आँखें निरंतर लोगों को शिक्षित बनाने की ओर लगी रहती थीं। देश की भावी पीढ़ी को संस्कारित, शिक्षित, योग्य और उत्तरदायी बनाने के लिए डॉ. साहब एक सुनियोजित एवं संघटित प्रयास की आवश्यकता पर बल देते थे, जो किसी संघटित, समर्पित संस्था के द्वारा ही संभव था। डॉ. साहब को इस बात की हमेशा चिंता लगी रहती थी कि आज बेहतर नागरिक बनानेवाली शिक्षा नहीं दी जा रही है। आज तो छात्र कोई चीज इसलिए पढ़ता है, क्योंकि वह प्रतियोगिता में काम आता है। संचार के प्राथमिक उपकरण उसे जातीय और धार्मिक सवालों में उलझाते हैं। नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने तथा नागरिक की विश्व दृष्टि विकसित करने के लिए जिस सांस्कृतिक-अकादमिक आधार की जरूरत है उसका अभाव दिखता है। आज तो ज्ञान का भी बाजार हो गया है। ज्ञान भी पूंजी की जगह लेता है। ज्ञान की भी इजारेदारी होती है। किंतु बाजारवाले समाजों में ज्ञान की यह दशा है कि आज जो फिल्में चलती हैं वे सिर्फ सेक्स और हिंसा का सहारा लेती हैं। शिक्षा का भी आज कारोबार हो रहा है। डॉ. साहब विचार का प्रसार निर्बाध न होने से इसलिए चिंतित रहते थे क्योंकि वैचारिक उदय तबतक संभव नहीं, जबतक विचार का प्रसार निर्बाध न हो। सामान्यजन के विचार शिक्षा, साहित्य, रंगकर्म और संचार माध्यम बनाता है। वर्तमान परिवेश में संचार माध्यम के अलावा शेष ध्वस्त हैं। मीडिया भी अपनी साख बनाने में असमर्थ है। डॉ. साहब की मान्यता थी कि ज्ञान का अमर पक्षी अंधेरे समाजों में उजाला लाता है। आज के विकसित समाजों के पीछे ज्ञान और कर्म का जबर्दस्त जुड़ाव है। इसमें विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भी भूमिका है। पर हम इस दौड़ में पीछे हैं, क्योंकि प्रतिमाओं को दूध पिलाना, रंगकर्मियों की हत्या करना, पुस्तकालयों और छात्रात्रासों पर हमला बोलना, कलाकारों की रचनाएँ फाड़ना-जलाना समाज विरोधी क्रिया तो है ही, ज्ञान विरोधी भी है।

डॉ. साहब के अतीत पर जब हमारी नजर जाती है, तो हम पाते हैं कि इतिहास में बिखरे-पड़े मानकों को भगीरथ-प्रयत्न से समेटकर गौरवशाली संस्कृति और शिक्षा की सहज बोधमाला गूँथना भी उनकी एक आदत थी। आखिर तभी तो सरदार पटेल छात्रावास को ख्याति-शिखर तक पहुँचाने के लिए उन्हें काफी लंबा रास्ता तय करना पड़ा। ऐसी महान विभूति, जिसने जीवन-ज्योति जगाई की स्मृति को मैं नमस्कार करता हूँ। आज ऐसे लगनशील, कर्मठ चिकित्सक और समाज-सेवी कहाँ मिलेंगे, जो स्वयं की कमाई समाज की सेवा में लगा दें। वस्तुत: कुछ लोग मौन साधक होते हैं, जो समाज को देना जानते हैं, लेना नहीं। डॉ. मोहन सिंह जी को ये संस्कार निश्चित रूप से प्राप्त थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज अधिकतर साधक ऐसे हैं, जो केवल पेट के चूहों की तृप्ति के लिए साधना करते हैं, किंतु डॉ. साहब ऐसे मौन साधक थे, जो समाज, संस्कृति, चिकित्सा के लिए पूरा समय तन, मन, धन सब कुछ अर्पित करने के लिए तत्पर रहते थे। वैसे कहा भी गया है कि कामना से लिप्त कोई भी कार्य प्रशंसनीय नहीं होता। कामनारहित कार्य ही सच्ची सेवा है। डॉ. साहब कामना-रहित सेवक थे, जिन्होंने समाज से, शासन से, कभी कुछ नहीं चाहा, किसी फल की कामना नहीं की और कर्म पर ही विश्वास रखा। आज थोड़ा करके भी लोग अधिक फल पाने की लालसा लिए बेचैन रहते हैं और अपने को प्रचारित करने हेतु अपने को आकर्षण का केंद्र बनाते नहीं हिचकते, सामाजिक-साहित्यिक सम्मान हो अथवा 'पद्मश्री', 'पद्मभूषण', 'पद्मविभूषण' जैसे राष्ट्रीय सम्मान हों, उसे प्राप्त करने की होड़ में अपनी आत्मा का हनन करने से बाज नहीं आते, पर डॉ. साहब ने कभी कुछ ऐसा नहीं चाहा, यद्यपि वे निश्चित रूप से हकदार थे। डॉ. साहब ने समाज व राष्ट्र के प्रति अपने अवदानों का कभी कोई प्रतिदान नहीं चाहा, क्योंकि समाज के लोगों को देने में ही उन्हें सुख-संतोष था।

समाज का हर व्यक्ति चाहता तो है कि जीवन के रंगमंच पर वह मुख्य भूमिका अदा करे, किंतु विडंबना यह है कि उसकी पूरी उम्र

चरित्र-अभिनय में ही गुजर जाती है। डॉ. मोहन सिंह ने अपने जीवन के रंगमंच पर अपनी सार्थक भूमिका निभाने की कोशिश की। उनकी इस भूमिका में सरदार पटेल छात्रावास के रूप में यह अमरकृति इनकी गौरवगाथा कहती रहेगी। जहाँ तक इस छात्रावास की उपलब्धियों का सवाल है अबतक इस छात्रावास के भारतीय प्रशासनिक सेवा से लेकर बिहार प्रशासनिक सेवा, बिहार आरक्षी सेवा के अनेकों अधिकारी के साथ-साथ सैकड़ों अभियंता एवं चिकित्सक बनकर देश व राज्य की सेवा कर रहे हैं। डॉ. साहब आज हमारे बीच नहीं हैं पर वे अपने पीछे जो क्रियाकलाप छोड़ गए हैं, वह लंबे समय तक उन्हें हमारे बीच बनाए रखेगा।

डॉ. मोहन सिंह जी के दैनिक जीवन में नम्रता और मधुरता का प्रभाव आसानी से देखा जा सकता था। जबकि आज के लोगों के जीवन में इसका अभाव खटकता है। उनके मन में अंतर्निहित सद्‌वृतियों के प्रति आदर और विश्वास का संदेश निहित था। शांति, सद्‌भावना और कर्मठता से पोषित भूमि में ही प्रेमवल्लेरी का उद्‌भव और विकास संभव है।

आचार-व्यवहार में कालांतर से यांत्रिकता आ जाती है। इसीलिए विचार और आचार-इन दोनों को सामाजिक नीति-मूल्यों की कसौटी पर रखने पर ही मानवीय जीवन में पूर्णता आ सकेगी। इस दृष्टिकोण से देश व समाज के स्तर पर जो महान कार्य डॉ. मोहन सिंह जी ने अपने जीवन में किया, उसके पीछे सामाजिक आशय अवश्य है, क्योंकि जिस समाज और सामाजिक परिस्थितियों से समायोजित होकर हम धन, वैभव, यश, कीर्ति प्राप्त करते हैं, उस समाज के छोटे तबके के व्यक्तियों के प्रति जो हमारी भूमिका है, उसका यथार्थ ज्ञान डॉ. साहब को था।

वर्तमान जीवन अत्यंत जटिल बन गया है। मनुष्य कभी इतना स्वार्थी न था, जितना आज है। पहले राष्ट्र इतने अँधे न थे जितने आज हैं। पहले मनुष्य राष्ट्रीयता और सामाजिकता की परिधि में जी सकता था। अपने हृदय को व्यापक, विशाल और विराट बना सकता था, लेकिन सभ्यता और संस्कृति के बदलते हुए रूप ने जीवन की बदलती हुई

परिस्थितियों को कठिन बना दिया है। जीवन की विभिन्न जटिलताएँ, बुद्धिवाद का विकृत रूप, सभी क्षेत्रों में स्वार्थ का बवंडर, इनसे मनुष्य को ऊपर उठना है, तो डॉ. साहब के आपसी सहयोग एवं भाईचारे के विचार के रास्ते का ही अवलंबन करना हमारा युग धर्म है। उनके बताए रास्ते पर चलकर आपसी सहयोग एवं भाईचारे के तत्त्व को व्यापक रूप में स्वीकार कर लेने से शक्तिहीनों को हर प्रकार के शोषण से मुक्ति मिलेगी और मध्य वर्ग के लिए तो यह विचार वरदान सिद्ध होगा।

डॉ. मोहन सिंह जी सचमुच एक मनीषी और बहुत बड़े समाज-सेवी थे। वे इसलिए बड़े नहीं थे कि देश के एक जाने-माने बैक्टेरियोलॉजिस्ट होने के नाते रक्त एवं पेशाब आदि को सूक्ष्मरूप से जाँच कर उसके विकार को निकाल पाते थे, बल्कि वे इसलिए बड़े थे कि वे भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान रूप थे और वे किसी को छोटा नहीं मानते थे। मरीजों की सारी सीमाओं और संभावनाओं के साथ जानते-मानते थे। उनमें समस्याओं को सहजता के साथ सामना करने की क्षमता थी। समस्या उत्पन्न होने पर इस संबंध में वे दूसरों से भी सलाह लेते थे। इस बारे में भावनाओं या अहं का स्थान उनके लिए गौण हो जाता था। किसी दूसरे की समस्या को भी वे गौर से सुनकर उस बारे में विचार-विमर्श करते थे और तब उसका समाधान निकालते थे। डॉ. साहब का मानना था कि जो दूसरे का हित नहीं चाहता है, विकास नहीं चाहता, अभ्युदय नहीं चाहता और उसके लिए प्रयत्न भी नहीं करता, उसका अपना विकास एवं उदय भी नहीं होता। उनके जीवन का हर कोना ज्योतिर्मय था। उनके आचार पक्ष पर नजर डालिए या विचार पक्ष पर, सब ओर मनुष्य के अभ्युदय के लिए ज्योति है, प्रकाश है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति रहनेवाला प्रेम, स्नेह एवं विश्वास कम होता जा रहा है। वात्सल्य का झरना सूखता जा रहा है। आकाश और धरती पर विज्ञान की जीत होते हुए भी आज मानव जाति का आपसी व्यवहार उलझन में पड़ गया है। इन उलझनों को कैसे सुलझाया जा सकता है, मनुष्य-मनुष्य के मन के बीच

आई खांई को कैसे पाटा जा सकता है और मानव प्रेम, स्नेह एवं समन्वय के धरातल पर पुनः कैसे प्रतिष्ठित हो सकता है, इस बात को डॉ. मोहन सिंह जी के जीवन से, उनके विचारों से और उनके कार्यकलापों से सीखा जा सकता है। उलझन भरी परिस्थितियों को सुलझाना ही डॉ. साहब का जीवन रहा। वे जीवन के प्रभात से लेकर अपने अंतिम सांस तक मानव-मन की समस्याओं को ही सुलझाते रहे। जीवन की गुत्थियों को खोलना ही उनका काम था। इस पथ पर चलते हुए उन पर कभी-कभी कुछ अशिष्ट एवं भद्दे व्यंग्यों का भी प्रहार किया गया, किंतु इन व्यंग्य-प्रहारों से वे जरा भी विचलित नहीं हुए और न अपमान से उनका मन ही खिन्न हुआ। वही प्रसन्नता उनके चेहरे पर अठखेलियाँ कर रही थी, जो सदा-सर्वदा रही। उन्होंने सत्य पथ पर कदम बढ़ाते वक्त मान-अपमान की कतई परवाह नहीं की, क्योंकि वे इस बात से पूर्णतः अवगत थे कि इस पथ के पथिकों को सम्मान के स्थान पर अपमान ही अधिक मिलता है।

डॉ. मोहन सिंह जी महान नेता या महान साहित्यिक भले ही न रहे हों, पर छोटी-छोटी महानताएँ उनमें भरपूर थीं। पारिवारिक जीवन में वे सदा ही आदर्श थे। यही कारण है कि उनके आदर्श पर चलकर उनके सुपुत्र डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह और पुत्रवधू डॉ. रेखा सिंह दोनों सुप्रसिद्ध चिकित्सक हुए।

डॉ. साहब के व्यक्तित्व में एक विशेषता यह भी थी कि वे एक गतिशील यात्री की तरह अपने पथ पर अग्रसर होते रहे और अपने बारे में कुछ नहीं बताए। वैसे भी एक गतिशील यात्री अपने बारे में कुछ नहीं बताता है। नहीं बताने में उसका कोई अन्यथा भाव नहीं रहता, केवल उसकी विलक्षण भाव स्थिति ही होती है कि उसके लिए कोई अवरोध अवरोधरूप था नहीं। देखनेवालों की नजरों में विघ्न-बाधाएँ हैं, परंतु गतिशील यात्री के लिए हर एक बाधा प्रगति का सोपान होती है। डॉ. साहब भी एक ऐसे ही गतिशील यात्री थे, जिन्होंने अपने रास्ते की बाधाओं की बिना परवाह किए आगे बढ़ते रहे। ऐसे वक्त मुझे किसी कवि की ये पंक्तियाँ याद आती हैं-

"तुम अमावस का सघन अँधेरा ले आओ,
मैं दीपमाला जलाऊँ।"

समाज को लाभ पहुँचाने और राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देने की दिशा में डॉ. साहब के प्रयास सराहनीय रहे हैं।

हर कर्म निर्माण से पूर्व एक कल्पना ही होती है। सरदार पटेल छात्रावास भी एक दिन कल्पना में था। कल्पना को मूर्तरूप देने के लिए किसी व्यक्ति की शक्ति की वचनबद्धता होती है।

आज एक भव्य रूप लिए कमरों का एक विशाल भवन है पटना के मुसल्लहपुर में सरदार पटेल छात्रावास। इसका निर्माण काल कैसे गुजरा, क्या हुआ, क्या करना शेष रह गया है, यह सब तो बीते दिनों की बात है। फिर भी जो देखा गया है, उसे हम अपने अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत कर सकते हैं, किंतु इस कृति को जान लेना तबतक अधूरा है, जबतक उसके निर्माता को न जान लें। बिना महान निर्माता के निर्मिति में महानता आती नहीं है। पर यह भी सच है कि कृति की अपेक्षा कृतिकार के बारे में कुछ कहना-जानना अत्यंत कठिन है। फिर भी जानने के प्रयास सदैव होते रहे हैं, होते रहेंगे। यह पूरी पुस्तक हमारा नम्र प्रयास है, एक विलक्षण अर्थपूर्ण संदर्भ है इस छात्रावास के निर्माता डॉ. मोहन सिंह को जान पाने का। सरदार पटेल छात्रावास डॉ. साहब के सर्वात्मना समर्पण का यह एक विलक्षण रूप है। उनके समर्पण के रूप में खड़ा भव्य सुंदर छात्रावास भवन हमें अवाक कर देता है।

जिस प्रकार कृषक अपने खेतों में नई फसल को लगाने के बाद अपने खून-पसीने के परिश्रम का सुखद प्रतिफल पाकर प्रसन्न होता है, ठीक वैसे ही डॉ० मोहन बाबू छात्रावास के निर्मित रूपों को देखकर परिश्रम की सफलता को पूर्ण मानते थे। वे जीवन को परिश्रम का ही रूपांतरित पर्याय मानते थे।

ताजमहल से उसके निर्माता शाहजहाँ याद किए जाते हैं, सरदार पटेल छात्रावास से मोहन बाबू याद किये जाएँगे। उनका यह कृतित्व उनके

विद्यानुराग का प्रतिबिम्ब है। छात्रावास उनके महत् प्रयास-प्रयत्न का मूर्त्त रूप है। महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी की स्थापना की। मौडिहाँ के मोहन ने छात्रावास की। वे उनके नक्शेकदम पर चल कर उनकी तरह ही प्रसिद्धि पा गये, जिसकी कामना भी उन्हें नहीं थी, मोहन बाबू निष्काम कर्मयोगी थे, कर्त्तव्यनिष्ठ किंतु फलाशा रहित।

●●●

खण्ड–चार

निर्माण काल

लोकोन्मुखी विचारधारा के सतत संचालक :

पैथोलॉजिकल जाँच–सम्मत चिंतन और समाज–साधना के दो कूल–किनारों के बीच अहर्निश जिनकी जीवन सरिता की उज्ज्वल और निर्मल जलधारा प्रवाहित होती रही है, उस शिखर साधक और समाज–सेवी का एकीकृत नाम है–डॉ. मोहन सिंह। अपने दीर्घ जीवन के पथ पर चलने के क्रम में इन्होंने एक ओर अपना ऐतिहासिक परिचय बहुमुखी प्रतिभा के चिकित्सक व पैथोलॉजिकल–जाँच विशेषज्ञ के रूप में दिया है, तो दूसरी ओर समाज–संचेतना के सतत संचालक के रूप में समाज को संघर्षशील जीवन के लोकहित परक काम्य की ओर प्रेरित किया है। विज्ञापनों की सतरंगी दुनिया के चकाचौंध से दूर और बहुत दूर रहकर, इस बहुआयामी व्यक्तित्व के ऋजुकल्प संत ने स्वयं अनामकता के गहन अँधकार की पीड़ा के दंश को पल–पल झेलकर न जाने कितने रोगियों एवं गरीब तबके के लोगों को सनामता और सुनामता के प्रकाश रथ का आलोकमय रथी बना दिया है और हमारे जैसे अनेकों सामाजिक कार्यकर्ताओं को समाज के पथ पर सदैव अग्रसर होते जाने को प्रोत्साहित किया है। आखिर तभी तो इनकी साधना और समाज सेवा की इंगितिधारा सदा और सर्वदा लोकोन्मुखी रही है। डॉ. साहब अपने कर्म पथ पर निरंतर गतिशील रहकर ही अपने होने का अहसास कराया। इन्होंने प्राचीन और नवीन के बीच संबंध–सेतु का निर्माण किया। वह समाज–सेवियों में अहर्निशगतिशीलता के आकांक्षी रहे। वह सदैव चिकित्सक और समाज–सेवी दोनों के द्वैत के साथ अद्वैत बने रहे। समत्व, समदृष्टि तथा सर्वधर्म समभाव के पालक डॉ. मोहन सिंह जी का व्यक्तित्व संवेदनशील मानव, व्यवहार सद्गृहस्थ, गवेषणापटु पैथोलॉजिस्ट तथा जनमंगल की कामना से ओतप्रोत उदात्त चरित्र का पावन संगम है।

वस्तुतः डॉ. मोहन सिंह के बहुशः प्रशंसित व्यक्तित्व को एक ओर इनकी भावना की तरलता ने प्रचालित कर उसे महिमामंडित रूप में सार्वकालिक प्रांसगिक बना दिया है तो दूसरी ओर इनकी बौद्धिकता के

चट्टनत्त्व ने समाज को वैज्ञानिक चिंतन के स्वरूप की ओर इंगित किया है। इनके द्वारा सेवित विभिन्न क्षेत्रों की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो हमें सहज मे यह विश्वास नहीं होता कि एक ही व्यक्ति की समाज साधना और चिकित्सा-सेवा की दृष्टि इस रूप में बहुआयामी दिशा और दशा को अपनी परिधि रेखा में इस प्रकार समेटकर चलने में समर्थ हो सकती है। मुझे यह कहते कोई संकोच कतई नहीं है कि डॉ. साहब समाज की पुरातन प्रकृष्ट आश्रयदाता-परंपरा की एक महार्घ कड़ी थे और इनके सौजन्य, स्नेह वात्सल्य की अमृत से सिंचित होकर अनेक चिकित्सक एवं समाज-सेवी चमत्कृत हो रहे हैं और वे पुष्पित होकर सुरभि-दान कर रहे हैं। कलुष और दुर्भावना से कोसों दूर इनका व्यक्तित्व इनके कर्त्तृत्व से भी अधिक सुष्ठु, सौम्य, आकर्षक और प्रभावशाली था। एक बार जान-पहचान हो जाने के पश्चात् इन्हें कोई भूल नहीं सकता। इनसे मिलकर किसी को भी ऐसा प्रतीत होता था, मानों जन्म-जन्मांतर से उसका और इनका लगाव था। एक नि:स्वार्थ समाज सेवी, सच्चे राष्ट्र प्रेमी और मानवता के गौरव से संपन्न डॉ. साहब के आदर्श अकुंठ व्यक्तित्व के बारे में जो भी लिखा-कहा जाए, वह वस्तुत: थोड़ा होगा।

डॉ. मोहन सिंह अपने साथ रहनेवाले हर व्यक्ति को ऊँचा उठाने और उसे बड़प्पन का अहसास दिलाने की कोशिश करते रहते थे। जब भी मैं पटना के कदमकुआँ स्थित जगतनारायण रोड में उनके निवास अथवा खजाँची रोड स्थित उनके 'जाँच-घर' में उनसे मिलने गया उन्होंने वहाँ आनेवाले एक-एक व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से मेरा परिचय करवाया और इतना सम्मान दिया-दिलवाया कि अति साधारण होते हुए भी मुझे खुद के बहुत कुछ होने का अहसास होने लगता था। आपाधापी के इस दिग्भ्रांत युग में भी सदाशयता के ऐसे मूर्तिमान विग्रह को पाकर भला कौन समाज गर्व का अनुभव नहीं करेगा? जो विध्वंस के शरासन पर भी सृजन का वाण रखता है, जिसने प्रज्ञा की पूर्णिमा से अज्ञान के अमावस को विदीर्ण कर अपने समाज के अस्तित्व को प्रकाशमान किया, ऐसे व्यक्तित्व पर नाज करना किसी समाज के लिए स्वाभाविक है। इस प्रकार देखा जाए तो डॉ. साहब ने अपनी सहिष्णुता, धीरता, निश्छलता, सामाजिक प्रतिबद्धता तथा

पैथोलॉजिकल जाँच के प्रति निष्ठा और ईमानदारी की वजह से न केवल विद्वत समाज में, बल्कि संपूर्ण समाज में उनके प्रति आदर का भाव है। जब भी समाज के किसी मोड़ पर उनकी चर्चा होती है, तो लोग उनकी स्मृति को नमन करते हैं। गीता के निष्काम कर्मयोगी की तरह कर्म के प्रति निष्काम भाव से संपूर्ण समर्पित रहे डॉ. साहब के व्यक्तिगत जीवन की अनेक स्मृतियाँ आज भी समाज के लोगों के मन की तिजोरी में बंद हैं। लोगों द्वारा स्मृतियों को आज तक संजोए रखने के पीछे एक कारण यह भी है कि संपूर्ण समाज में डॉ. साहब का व्यक्तित्व न तो किसी विवाद के घेरे में आया और न वे ईर्ष्या-द्वेष के शिकार हुए। खासकर विद्वत समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या प्राय: नगण्य ही रहती है, जिनका व्यक्तित्व अपवादों से मुक्त हो तथा जो ईर्ष्या-द्वेष से सर्वथा असंपृक्त हों। सुप्रसिद्ध समीक्षक एवं सुलझे साहित्यकार डॉ. शिववंश पाण्डेय के मतानुसार विद्वानों के बारे में यह शास्त्रीय मान्यता है कि वे संकीर्ण मनोवृतियों से सर्वथा विलग रहकर समभाव से लोकहित चिंतन को ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। यजुर्वेद के शब्दों में ऐसे विपश्चित 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे' के अनुयायी तथा "भद्रं कर्णोभि: शृणुयामै" के आग्रही होते हैं। 'तन्मे मन: शिवसङ्क.ल्प्रमस्तु' के व्रती ऐसे विद्या पुरुषों की सदा से कामना रही है कि मेरा ही मन केवल उत्तम संकल्पों वाला न हो, अपितु सभी दिशाएँ हमारे लिए हितकारिणी हों-सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु (अर्थववेद 19/15/6) अर्थात सभी लोग सुखी और समृद्ध रहें।

डॉ. मोहन सिंह को मैंने भी पिछले तीन दशक से ऐसे ही विपश्चित रूप में देखा, जिन्होंने सभी के सुखी और समृद्ध रहने का पाठ पढ़ा था और लोगों को सुखी और समृद्ध देखने की आकांक्षा से विराम करना, विश्राम करना कभी जाना ही नहीं। सतत् कर्ममय जीवन में लीन डॉ. साहब सदैव श्रद्धा के पात्र रहे। जीवन एक बहुमूल्य यंत्र के समान है, डॉ. साहब ने इस यंत्र को सुगढ़ता के साथ इस्तेमाल करना सदैव एककला समझा। इसी वजह से उन्होंने सुखपूर्वक रहकर अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया। जीवन के इस बहुमूल्य यंत्र को जिसने ठीक से उपयोग करना नहीं सीखा, वे इस उपकरण को तो बिगाड़ेंगे ही, अपने

हाथ-पैर भी तोड़कर रख देंगे। डॉ. साहब ने बड़ी संजीदगी के साथ अपने जीवन रूपी यंत्र का इस्तेमाल किया और अपने लक्ष्य को मद्दे नजर रखते हुए वे अपने जीवन-पथ पर बढ़ते रहे। इसके लिए उन्होंने विचारों के स्वरूप को समझा, क्योंकि विचार ही व्यक्ति को ऊँचा उठाते अथवा पतन के गर्त में ढकेलते हैं। उनके सृजनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति प्रसन्नता, संतुष्टि, साहस, करुणा, सहृदयता और सहानुभूति आदि भावों के रूप में हुई और उनके सृजनात्मक चिंतन उनके आचरण तथा व्यवहार को गढ़कर उन्हें सौंदर्यवान बनाने में मददगार सिद्ध हुए। डॉ. साहब के भीतर यही कुछ ऐसा था, जो मेरे मन को बराबर आकृष्ट करता रहा और मैं उनकी स्नेहिल आत्मीयता की डोर में बँधता चला गया।

नई पीढ़ी के भीतर संभावनाओं की खोज करने, उन्हें प्रोत्साहित तथा उनका सही मार्गदर्शन करनेवाला डॉ. मोहन सिंह जैसा समाजसेवी मैंने कम देखा है। यही कारण है कि उनसे मिलनेवालों का एक ताँता लगा रहता था। उनके संपर्क में जो एक बार भी प्रेम-भाव से आया, वह हमेशा के लिए उनका अपना हो गया। अपने भीतर कुछ रखकर वे किसी से नहीं मिलते। उनके बाहर जो था, वही उनके भीतर भी रहता था। खुली किताब की तरह उन्हें पढ़ा जा सकता था। दूसरों की दु:स्थिति से पीड़ित होकर उनकी आँखों को छलछलाते मैंने देखा है। मुझे ऐसा लगता है कि जो व्यक्ति अपने भीतर के गुणों से संपन्न होता है, भौतिकता दिखावा और मर्यादा का झूठा दंभ उसे कभी आकृष्ट नहीं कर सकता।

डॉ. मोहन सिंह जी के स्वभाव की विनम्र कमनीयता उनके मित्रों, सहकर्मियों के साथ-साथ समाज के सभी वर्गों के बीच चर्चा और आकर्षण का केंद्र रही है। कारण कि आज के युग की बदलती हुई स्थितियों के बीच भी उनमें कुछ ऐसा था, जो नहीं बदल सका, और वह था उनके भीतर का अंतरंग अपनापन। आखिर तभी तो जितनी आत्मीयता के साथ ये और इनका पूरा परिवार अतिथियों के स्वागत में लगा दिखता था, वह किसी प्राचीन युग की अतिथ्य-परंपरा की याद दिलाता था। पूरा घर विनम्रतापूर्वक 'अतिथिदेवो भव:' वाली सूक्ति को आधार मानकर अपने कर्त्तव्य, अपने दायित्व से जुड़ा था। इस प्रकार हम पाते हैं कि डॉ.

साहब का इतिहास भूत नहीं, वह तो काल की सीमा लाँघकर वर्तमान में पहुँच जाता है। इनके लिए इतिहास, इतिहास नहीं, एक जीवंत प्रकरण-सा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल की परिधि में स्थित चरित्रों के साथ-साथ इन्होंने समाज की समता-विषमताओं को भोगा था। अस्तुः डॉ. साहब का व्यक्तित्व किसी जाति अथवा वर्ग की परिधि में बाँधा नहीं जा सकता। बिहार की माटी के तपः पूत डॉ. साहब, बिहार के साथ-साथ देश की अस्मिता और एकता को अक्षुण्ण रखने तथा अपने आचरण और व्यवहार के माध्यम से नैतिक मूल्यों की स्थापना करने के प्रयास में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखा। राष्ट्र के लिए, समाज के लिए, मित्रों व सहकर्मियों के लिए कुछ सहायता कर सकने की उनकी उत्कट लालसा बड़ी प्रेरक थी। उनके सान्निध्य में रहकर जो कुछ मैंने देखा, वह मेरे मानस-पटल पर आज भी उतनी ही साफ अंकित है, जैसे कल की बात हो।

डॉ. मोहन सिंह जी बाहर से जितने सौम्य थे, उससे भी ज्यादा मोहन था उनके आभ्यंतर रूप। उनकी मंजुल मुखाकृति पर निष्कपट विचारों की भव्य आभा दृष्टिगोचर होती थी और उदार आँखों के भीतर से सहज स्नेह-सुधा छलकती थी। वार्त्तालाप में सरस शालीनता के दर्शन होते थे और हृदय की उच्छल संवदेनशीलता एवं उदात्त उदारता दिखाई देती थी। उनकी उपस्थिति से कोई भी सभा शोभायमान तो होती ही थी, किसी भी मच को गुरुता प्रदान करती थी। बोलने के क्रम में जब कभी कोई प्रसंग आता था, तो उनकी आँखें छलछला आती थीं। इसी प्रकार कभी उल्लास के प्रसंग में उनके चेहरे पर ओज और उल्लास की हरियाली लहलहा उठती थी। यही वजह है कि श्रोता बिना ऊबे काफी देर तक उनको आत्मविभोर होकर सुनते रहते थे। उनके भाषण की भाषा सरल, सर्वग्राही, सुपाच्य और प्रभावोत्पादक होती थी। उनके भाषण में सामाजिक व्याधियाँ व कुरीतियाँ हमेशा परिलक्षित होती थी, क्योंकि वे सर्वदा उन्हें चिंतित करती थीं और जिसके उपचार व निदान के लिए वे सतत संघर्षशील और प्रयासरत रहते थे। यही कारण है कि उनके प्रति अतिशय सम्मान का भाव रखता था। शालीनता उनके रक्त में घुली हुई

थी। बहुत हद तक आत्मसम्मान की भावना भी स्वयं उनके स्वभाव में थी।

वे शुचिवाग्मी और हमारे आदर्श थे। संकीर्णता से बहुत ऊपर उर्जस्वल उनका व्यक्तित्व आज भी हमारा प्रेरणा-स्त्रोत है।

'ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय'

इसे मोहन बाबू ने शब्दसः उतार लिया था। वाणी के विरल वरदान का उन्होंने सदा सदुपयोग किया, स्वहित के लिए नहीं, जनहित के लिए। उनकी जिह्वा नहीं, उनका हृदय बोलता था। मीठी वाणी और सद्व्यवहार के कारण वे अजातशत्रु बन चुके थे।

भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासकः

संस्कृति के बारे में एक कथन है कि संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित कराना संस्कृति है। भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामाजिक है जिसका विकास क्रमिक हुआ है। अनंतकाल से एक निश्चित परंपरा एवं चिंतन का समुचित विकास भारत की अनन्य विशेषता है। इस विशेषता के मूल में भारतीय संस्कृति की अंतरात्मा निहित है। भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि उसके सांस्कृतिक दिव्य-द्रष्टाओं ने बहुत ही उदार और महान सिद्धांतों का निर्माण किया। "मित्ति में सब्ब भूए सू वैरं मज्झण केणई"। अर्थात हमारी सबके साथ मैत्री है, किसी के साथ कोई बैर नहीं है। यही उदार भावनामय संस्कार भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण आधार हैं।

प्रत्येक देश और संस्कृति के आधार भिन्न-भिन्न होते हैं। भारत और भारतीय संस्कृति का यह अहोभाग्य है कि इसकी आधारशिला त्याग, वैराग्य, समता, बंधुत्व, दया, करुणा, सत्य और अहिंसा पर टिकी हुई है। इसी अविच्छिन्न धारा को संतों, साधुओं, श्रमणों, भिक्षुकों ने प्रवहमान रखा है। यह इस मिट्टी की विशेषता कही जा सकती है कि यहाँ संतों का सम्मान सम्राटों से बढ़कर रहा और मस्ती में मस्त संतों ने 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम', इस अलमस्त शब्दावली का सहारा लिया। यहाँ की संतवाणी 'हम चाकर रघुवीर के' में अपनी सार्थकता को तलाशती और

तरासती रही चक्रवर्ती सम्राटों के सिर अकिंचन श्रमणों और नंगे फकीरों के चरणों में झुकते रहे हैं और झुकने में गौरव तथा अभिमान का अनुभव करते रहे हैं। यह बात ठीक है कि संस्कृति के सिद्धांतों में मानवीय भावनाओं का समावेश है, लेकिन कोई भी संस्कृति केवल अपने इतिहास एवं यशोगाथाओं के सहारे जीवित नहीं रह सकती। यह तभी संभव है जब उसका अनुयायी वर्ग तदनुरूप आचरण-विचरण करे और प्राणीमात्र की भलाई के लिए अग्रसर हो।

डॉ. मोहन सिंह का व्यक्तित्व सब प्रकार से आकर्षक रहा है और जिनके रोम-रोम में भारतीय संस्कृति समाई रही। भारतीय परंपरा और भारतीय संस्कृति के वे सच्चे उपासक थे। निर्भय होकर सत्य को वे अपने कथन में अभिव्यक्ति करते थे। अनैतिकता किसी भी क्षेत्र में उनको सहन नहीं होती थी। देश के हित को देखते हुए जो भी अवांछनीय विचार और घटनाएँ उनके समक्ष आती थीं उसका वे जोरदार शब्दों में विरोध करते थे। चाटूकारिता की गंध उनके जीवन में बिल्कुल नहीं थी। किसी को भी वे खरी-खोटी सुना देते थे। उनके मिलने में, उनके बोलने में और उनके व्यवहार में मैंने सदैव सहजता और सरलता की झलक पाई।

डॉ. साहब सहज स्नेही व्यक्ति थे। इनके मन में उदारता की दुग्ध गंगा प्रवाहित होती रहती थी। जब जहाँ जिसने इनसे सहायता की अपेक्षा की, वे उन्हें सहयोग करने में कभी नहीं हिचकिचाए। वे किसी संकीर्णता के घेरे में कभी बंद नहीं हुए। उन्होंने जो कुछ समाज को दिया उसे आत्मसात करने की जरूरत है। उनकी स्मृति को संवारना अपने आपको संवारना है। उनके गुणों को पूरे समाज में प्रचारित करने की आवश्यकता है। डॉ. मोहन सिंह ने जिन उद्येश्यों को पूरा करने का प्रयास किया उसे और आगे बढ़ाने की जरूरत है। संस्कृति का भाव भी डॉ. साहब सरीखे पुरुषों की पौराणिक उपस्थिति से निर्मित होता है।

आदि युग में विभिन्न क्षेत्रों में जब सामूहिक जीवन का विकास आदिम मानवों ने किया होगा, तब उन्होंने अपनी व्यक्तिगत और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप समाज के निर्माण हेतु कुछ सांस्कृतिक प्रणालियाँ

और रीति-रिवाजों की भी संरचना की होगी। ये सांस्कृतिक पद्धतियाँ कुछ आर्य पुरुषों की प्रेरणा या उनके कार्यकलापों पर आधारित रही होगी। डॉ. साहब के कार्यकलापों में भी भारतीय संस्कृति की एक झलक देखने को मिलती है, क्योंकि उनमें समाज और राष्ट्रहित के प्रति संपूर्ण समर्पण की भावना दृष्टिगोचर होती है जो भारतीय संस्कृति की महती उपलब्धि है, इसमें कोई दो राय नहीं है। अपने देश की राष्ट्रीय संचेतना का यह रूप वस्तुतः अनूठा है, प्रणम्य है।

सच कहा जाए तो किसी भी समाज व देश की संपन्नता का आधार भी उसकी संस्कृति होती है। यह संस्कृति अध्यात्म के आधार पर विकसित होने से समस्त सृष्टि को एक ही चेतना सत्ता का विस्तार मानती है। इसी वजह से इसकी सृष्टि उदार तथा वृति त्यागमयी है। मानवीय दृष्टि ही भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि है। यही इसकी विशेषता है। डॉ. साहब के व्यक्तित्व में यही मानवीय दृष्टि सदैव देखने को मिली, क्योंकि उनके आचरण की अंतर्बाह्य शुद्धता तथा उदात्तता ने मानव के कल्याण की ओर उन्हें अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया। समाज के निर्माण में जो सार्थकता संस्कृति की है वास्तव में उस सार्थकता का संवाहक तो उस समाज का व्यक्ति होता है। समाज की श्रेष्ठता का भवन उसके श्रेष्ठ सदस्यों के आचरण के अधिष्ठान पर ही खड़ा होता है। डॉ. साहब ने समाज की सांस्कृतिक परंपरा को सुदृढ़ कर समाज रूपी भवन को श्रेष्ठ बनाया और अपने श्रेष्ठ आचरण को शब्दायित कर स्वयं भी समाज में अपनी सार्थकता प्रमाणित की बावजूद इसके कि अपनी अल्पभाषिता, शांतछवि और चमक-दमकहीन छवि होने की वजह से डॉ. साहब मीडिया के लिए अपरिचित से थे।

आजादी के बाद विभिन्न भाषावार प्रांतों में बँटा हुआ भारत आज एकता के सूत्र में बँधा है। बहुभाषा-भाषी एवं विविध संस्कृतियों के इस देश को एक सूत्र में पिरोने में हमारे कई संतों एवं महापुरुषों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. मोहन सिंह भी उनमें से एक ऐसे व्यक्ति हुए जिनमें सांस्कृतिक एकता के तत्व विद्यमान थे। राष्ट्र, जाति, रंग, वर्ण आदि भेदवृत्तियों को लाँघकर समस्त मानव को अपने बँधु के रूप में

स्वीकार करने की उनकी मानसिक प्रवृति रही। उनका मूल दृष्टिकोण मानव कल्याण एवं सामाजिक एकता और उत्थान ही रहा है। परिवर्तन की आँधियों ने जाति और धर्म को प्रभावित किया, परंतु सभ्यता एवं संस्कृति का कुछ अंश जो आज भी यहाँ विद्यमान है उसका श्रेय डॉ. मोहन सिंह जैसे महापुरुषों को भी जाता है, क्योंकि इसकी सुरक्षा के पीछे उनकी चिंतन-विचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वैसे भी डॉ. साहब स्वस्थ समाज की चिंता में ही जीते थे। वह सदैव इस बात के लिए चिंतित रहते थे कि वैचारिक क्षमता को सर्वथा अस्पष्ट छोड़ देने से देश व समाज विकास के क्रम में कितने पीछे छूट जाएगा, कहना मुश्किल है। उन्होंने स्वस्थ समाज व सबल राष्ट्र तथा मंगलकारी जीवन के नवविहान के लिए स्वस्थ चिंतन किया ताकि परिवर्तन की बुनियाद तैयार हो सके। समय की बदलती करवट में और विकास की अँधी दौड़ में जीवन के मूल्य-मर्यादाओं की सुरक्षा करने का प्रयास उन्होंने आजीवन किया। उन्होंने न केवल जीवन के मूल्यों का बड़ी निकटता से महसूस किया, बल्कि अतीत का अंकन और वर्तमान की अपेक्षाओं का मूल्यांकन कर गौरवशाली भविष्य के निर्धारण की जमीन तैयार की। पटना के मुसल्लहपुर में सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण उनके इसी सोच का एक सार्थक कदम था। उन्होंने खदान से निकले पाषाण की तरह अपने पुरुषार्थ के द्वारा जीवन को तरासकर छात्रावास के नौजवानों को प्रतिमा का रूप देने का अथक प्रयास किया ताकि आमजन प्रेग्नि हो सके। उन्होंने आधुनिक समाज की जटिल यांत्रिकता को समझने की कोशिश की ताकि समाज टूटने से बचे और व्यक्तित्व का विघटन भी रुके और स्वस्थ समाज की स्थापना हो सके। आज समाज का जो स्वरूप है वह अनायास नहीं है। इसमें क्रमिकता है और यही क्रमिकता हमें अतीत पर गर्व करने के लायक बनाती है। बीता हुआ कल तमाम संगतियों-विसंगतियों के बावजूद रोचक, सार्थक और तार्किक होता है, किंतु यह रोचकता, सार्थकता और तार्किकता यूँ ही निर्मित नहीं हुई। इसके लिए देश के डॉ. मोहन सिंह सरीखे समाजसेवियों एवं विचारकों-बुद्धिजीवियों को रुचि लेनी पड़ी है। सामाजिक संरचना और सामाजिक संगठन की अवधारणा महिलाओं, युवकों एवं बच्चों की स्थिति आदि को जानने-समझने की उन्होंने रुचि पैदा की। उन्होंने अपनी

सभ्यता-संस्कृति को सहेजने की स्वैच्छिक पड़ताल की ताकि राष्ट्र व समाज गौरव के प्रति समर्पण का भाव पनप सके और हम अपनी प्राचीनतम सभ्यता के होने का मर्म देश व विश्व के समक्ष रख सकें। इस प्रकार वे भारतीय-संस्कृति एवं भारतीयता के आख्यान के साथ प्रतिबद्ध रहे।

उपासना के क्रम में उपासक साधना के चरम बिंदु पर पहुँच कर उपास्य हो जाता है। कहना होगा कि मोहन बाबू संस्कृति की उपासना करते-करते उपास्य की कोटि में आ गये। वे संस्कृति की उपासना करते-करते संस्कृति बन गये। उन्हें संस्कृति-पुरुष कहना उपयुक्त होगा।

सदाचार और शिष्टाचार के प्रतिमानः

सदाचार और शिष्टाचार किसी व्यक्ति को महान बनाता है। डॉ. मोहन सिंह के व्यक्तित्व की यह विशेषता रही है कि उनमें सदाचार और शिष्टाचार का भाव कूट-कूट कर भरा था। सदाचार के साथ शिष्टाचार का घनिष्ट संबंध होता है। जहाँ ये दोनों विद्यमान होते हैं, वहाँ आत्मगौरव भी मुख्य अंग होता है। आत्मगौरव या आत्म सम्मान का अर्थ होता है व्यक्ति के 'स्व' का सम्मान। आत्म सम्मान आत्मा की वह वृत्ति है जिससे न्याय पर मर मिटने की इच्छा और दृढ़ होती है। यह साहस की संगिनी है। यह भाव समाज को उन्नत बनाने का सदा प्रयत्न करता है। डॉ. मोहन सिंह में सदाचार और शिष्टाचार का यही भाव विद्यमान था जिसके चलते उन्होंने आजीवन समाज को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया। सामाजिक वातावरण में सत्य, समता और मानवता की जलती मशाल बनकर डॉ. साहब का अर्भिभाव हुआ।

'सादा जीवन उच्च विचार' डॉ. साहब के व्यवहार में घुला-मिला था। आज के जीवन-व्यवहार में डॉ. मोहन सिंह का अपरिग्रह और उच्च विचार का सिद्धांत अत्यधिक प्रासंगिक है। डॉ. साहब का मानना था कि अपरिग्रह के सिद्धांत को चरितार्थ करने के लिए इच्छाओं को नियंत्रित करना परम आवश्यक है। परिमाण से अधिक की प्राप्ति का उपयोग अपने लिए नहीं

बल्कि समाज के लिए होना चाहिए। डॉ. साहब में यही दृष्टि विकसित हो गयी थी जिसके परिणामस्वरूप शेष सृष्टि और समाज के साथ सहानुभूति, प्रेम, एकता, समता और सेवा का भाव उनके मन में हमेशा जागृत होता रहता था। इस भावना के जागृत होने पर अहिंसा, अनासक्ति, वैचारिक उदारता और अपरिग्रह की साधना का विकास स्वतः होता चलता है।

हर समुदाय या जनसमूह की आदि स्मृतियाँ इतिहास से बहुत पहले की होती हैं और वे उसकी पौराणिक आख्यानों के रूप में व्यक्त होती रहती हैं। हर समाज के अपने कुछ मिथक पुरुष होते हैं, जो इन पौराणिक आख्यायिकाओं के महानायक होते हैं और जिनके चरित्र में उस समाज की समग्र आस्तिक संचेतना केंद्रीभूत होकर व्यक्त होती हैं। संस्कृति का भाव इन्हीं आदि स्मृतियाँ किवां मिथक पुरुषों की पौराणिक उपस्थिति से निर्मित होता है। डॉ. मोहन सिंह भी ऐसे ही मिथक पुरुष थे जिनकी पौराणिक उपस्थिति से समाज की संस्कृति का भाव दृष्टिगोचर होता है।

व्यक्ति में आकर्षण-विकर्षण की विरोधी भाव स्थितियों की उपस्थिति भी एक साथ होती है। इसी से अपने और पराये, स्व एवं पर के बोध उपजते हैं। इसी की वजह से अन्य समुदायों, उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से क्रिया-प्रतिक्रिया के द्विविध आयाम विकसित होते हैं और कई बार सांस्कृतिक संघर्ष की प्रक्रिया से इन चेतनाओं का सम्मिश्रण भी होता है। प्रकटतः पारस्परिक संघात कई समाज को राष्ट्रीयता-घातक लग सकता है, किंतु अपने औदात्य स्वरूप में यह राष्ट्रीयता को उदात्त एवं उदार बनाकर उसका उन्नयन करता है, उसे समृद्ध बनाता है। डॉ. साहब का सांस्कृतिक संघर्ष भी अंततः राष्ट्रीयता को उदात्त एवं उदार बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है, यह दावे के साथ कहा जा सकता है। कारण कि इन्होंने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की इयत्ता को एकात्म माना। उनके व्यक्तित्व के संस्कार के माध्यम से ही समाज व राष्ट्र का विकास कर सकते हैं।

गौरवर्ण, रस-समन्वित, हास्य और नैसर्गिक आभा से मंडित गोल चेहरा, उनका रूप वर्ण, बोलचाल सबकुछ आकर्षक था। उनमें विनय भी

था और अभय भी। सुगठित शरीर, पौरुषमय व्यक्तित्व, उन्नत ललाट और स्नेहपूर्ण सादगी उनके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती थी।

अतीत के पृष्ठ साक्षी हैं कि इस देश में प्राचीन काल से ही राष्ट्रहितों को सर्वोपरि महत्त्व देने की परंपरा चली आई है। भारतीय संस्कार भी देशभक्ति के निर्वाह की ही बात करते हैं। इसी का प्रतिफल है कि आर्यावर्त चहुँमुखी प्रगति कर सका। इतिहास साक्षी है कि भारतीयों ने सदैव निज स्वार्थों का परित्याग कर समाज व राष्ट्र के पावन भावों को धारण किया। डॉ. मोहन सिंह इन्हीं भारतीयों में से एक थे, जिन्होंने आंतरिक एकता, सामाजिक समरसता व समानता, सौहार्द व सद्भाव में बंधकर आर्थिक व सांस्कृतिक सोपानों की अभिप्राप्ति हेतु प्रयास किया। आखिर तभी तो वे समाज का गौरव-पुरुष कहलाने का हक प्राप्त कर सके।

यथार्थ यही है कि समाज व राष्ट्र के विकास हेतु उसके नागरिकों में सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं का आप्लावन होना अनिवार्य होता है। स्वतंत्रता काल में निहित स्वार्थों का तिरोहन और राष्ट्रीय भावों का व्यावहारिक अधिग्रहण ही अँग्रेजों को देश छोड़ने को विवश करनेवाला प्रमुख कारक बना। डॉ. मोहन सरीखे पुरुषों ने ही अपने स्वार्थों का परित्याग कर समाज व राष्ट्रीय भावों को जाग्रत करने का प्रयास किया। इन्होंने अपने दायित्व बोध का परिचय देकर राष्ट्रीयता का प्रदर्शन किया। वस्तुतः समाज व राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक द्वारा ईमानदारीपूर्वक अपने दायित्व का निर्वहन ही सबसे बड़ी राष्ट्रीयता है।

आत्मबल एवं आत्मविश्वास से परिपूर्णः

स्वयं के प्रति विश्वास आत्मबल बढ़ाता है। यह आत्म-विश्वास ही है जिसकी वजह से लोग एक से बढ़कर एक राजनेता, राष्ट्र निर्माता, रामाज-सुधारक एवं समाजसेवी, अभिनेता और संगीतज्ञ आदि बन चुके हैं। डॉ. मोहन सिंह इनमें से एक ऐसे ही समाजसेवी हुए जिनमें आत्म-विश्वास कूट-कूटकर भरा था। आत्मविश्वास और आत्मबल के बदौलत ही उन्होंने

सरदार पटेल छात्रावास का निर्माण कर अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया। आत्मविश्वास वस्तुत: उनके जीवन का आधार था। इसी के कारण डर नाम की चीज उनके मन में कभी नहीं रही। डर ही वह कारण है जो किसी व्यक्ति के आत्मविश्वास को डिगा देता है। किसी व्यक्ति में क्षमता है, योग्यता है, अतीत में प्राप्त सफलता की स्मृति भी है पर किसी कारण से गुप्त मन में भय समा गया है, तो आगे की राह बंद हो जाती है।

डॉ. साहब के समक्ष न कभी परेशानियाँ पैदा हुईं, न विरोधियों की धमकी मिली और न ही विश्वासघात या विछोह हुआ। वे भयंकर रोग के न तो कभी शिकार हुए और न परिवार और अर्थ की चिंता हुई। शत्रु-भय, चोर-डाकुओं का भय, नौकरी छूटने या व्यवसाय नष्ट हो जाने का भय भी उन्हें कभी नहीं सताया जिससे व्याकुल, उद्विग्न, परेशान, तनावग्रस्त एवं अवसादग्रस्त वे हों। ये सब बातें गुप्त मन में डेरा जमाकर आत्मविश्वास डिगा सकती है। हाँ, जब कभी भी कुछ परेशानियाँ इनके समक्ष आई भी तो प्रयत्न करके उनका निराकरण अच्छे ढंग से इन्होंने कर लिया। डॉ. साहब के व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता यह भी थी कि भविष्य के बारे में तरह-तरह की दुश्चिंताएँ वे कभी नहीं करते थे, निराशाओं के दलदल में नहीं डूबे रहते थे। इसके विपरीत वे हर परिस्थिति में अपने-आप में अपने विचारों से स्वयं अपनी हिम्मत बढ़ाते रहे, समस्याओं का समाधान निकालते रहे और आशापूर्ण दृष्टि अपनाते रहे। विरोधों-जटिलताओं से वे कभी नहीं घबराए। सदैव सुनहरे भविष्य के सपने संजोते रहे। उनके सकारात्मक चिंतन से सदैव उनका आत्मबल बढ़ता रहा। उनके अंतर में अहंकार का बीज कभी नहीं अंकुरित हुआ। जो कुछ अंकुरित हुआ भी तो वह उनके कार्यकलाप की सुगंध बन गया। समाज से पहचान का जो रिश्ता बना उसने डॉ. साहब के जीवन को काफी प्रभावित किया और उनकी अंत:चेतना जो चिंतन की सूरत में सरदार पटेल छात्रावास के रूप में साकार हुई उसने उनमें प्राण फूँके और उसके बाद उनका आत्मबल और बढ़ता गया। फिर तो सुबह से दोपहर, दोपहर से शाम, शाम से रात और रात से फिर सुबह तक बेहद लंबे सफर में उनका मन निकल पड़ता है अनंत

मनुष्यत्व की खोज में जो एक सत्य है, यथार्थ है और जिससे जीवन की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान :

चाटुकारिता से कोसों दूर डॉ. मोहन सिंह जी अपने कर्त्तव्य के प्रति काफी ईमानदार थे। सुप्रसिद्ध लेखक रामकृष्ण मेहता ने अपनी पुस्तक-'लवकुश विभूतियाँ' में डॉ. साहब से संबंधित कुछ अविस्मणीय घटनाओं की चर्चा करते हुए इनके जीवन की एक खास घटना, जिससे कर्त्तव्य के प्रति इनकी ईमानदारी झलकती है, का जिक्र किया है, जिसे मैं यहाँ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूँ। यह घटना जनवरी, 1961 की है। आजाद भारत में बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्ण सिंह एक बार अपने कोलकाता प्रवास के दौरान जब काफी अस्वस्थ हो गए, तो पटना से चिकित्सकों का एक दल उनकी चिकित्सा के लिए भेजा गया जिसमें डॉ. विजय नारायण सिंह, डॉ. मधुसूदन दास, डॉ. श्रीनिवास, डॉ. यू.एन. शाही, डॉ. ए. के.एन. सिन्हा तथा डॉ. सी.पी.ठाकुर थे। इस दल में डॉ. मोहन सिंह पैथोलॉजिस्ट के रूप में अकेले थे।

श्रीबाबू मधुमेह के रोगी थे और उनका ब्लड-सुगर उच्च रहता था। ब्लड-यूरिया भी बढ़ गया था। डॉ. मोहन सिंह को ब्लड-यूरिया की जाँच करनी थी। डॉ. विजय नारायण सिंह ने श्रीबाबू के Urinary Bladder के एक्सरे रिपोर्ट में पाँच-सात स्टोन्स पाने के बाद कहा कि स्टोन से ब्लड-यूरिया बढ़ सकता है और इसे आसानी से ऑपरेशन करके निकाला जा सकता है, किंतु इस बात से डॉ. शाही, डॉ. सिन्हा तथा डॉ. ठाकुर सहमत नहीं थे, इसलिए इन्होंने ऑपरेशन करना ठीक नहीं समझा। लेकिन डॉ. विजय ने श्रीबाबू के दोनों पुत्रों को अपने पक्ष में करके ऑपरेशन किया और पाँच-छह स्टोन्स यूरिनेरी ब्लाडर से निकालकर लोगों को दिखाया।

दूसरे दिन जब डॉ. मोहन सिंह ब्लड-यूरिया की जाँच कर रहे थे, तो रिपोर्ट तैयार होने के कुछ मिनट पहले डॉ. विजय, जो उन दिनों पटना मेडिकल कॉलेज के प्राचार्य थे ने डॉ. मोहन सिंह के पास आकर कहा कि

ब्लड-यूरिया को वे कम करके दिखाएँ। इस पर डॉ. मोहन सिंह ने अपने प्राचार्य को उत्तर दिया-"महाशय, जो रिर्पोट आएगी वही दी जाएगी, न कम न ज्यादा" फिर ब्लड-यूरिया 84 मिग्रा.प्रति 100 मिलि. ही आया जो ऑपरेशन के पूर्व था। यानी यूरिनरी ब्लाडर के स्टोन निकालने के बाद ब्लड-यूरिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह उदाहरण इस बात का परिचायक है कि डॉ. मोहन सिंह अपने कर्त्तव्य के प्रति अत्यंत ईमानदार और निष्ठावान थे।

सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति:

आधुनिक युग में डॉ. मोहन सिंह सरीखे सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति बहुत कम देखने को मिलेंगे, क्योंकि आज के उपभोक्तावादी संस्कृति के युग में जहाँ आदमी ऐशो-आराम की जिंदगी जीने का आदी होता जा रहा है, और उसने उसे बड़प्पन का मापदंड मान रखा है, वहीं डॉ. मोहन सिंह का सरल स्वभाव और सादगी भरा जीवन हर के लिए प्रेरणाप्रद बना। गाड़ी रहते हुए भी पटना के कदमकुआँ, जगतनारायण रोड स्थित अपने निवास स्थान से खजाँची रोड स्थित अपने क्लिनिक तक वे पैदल पाँव आते-जाते थे।

पटना मेडिकल कॉलेज के तत्कालीन प्राचार्य डॉ.एस.एन.पी. सिन्हा ने अपने एक संस्मरण में डॉ. मोहन सिंह जी की सादगी और सरलता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जब वे किसी पैरवी के लिए उनके घर सुबह-सुबह गए, तो उन्होंने देखा कि डॉ. साहब एक पीढ़िया पर बैठकर साधारण-सा खाना खा रहे थे। उनके पूछने पर कि खाना इतना सबेरे कैसे बन गया तो उन्होंने कहा कि वे स्वयं खाना बनाए हैं। डॉ. सिन्हा पुनः कहते हैं कि वे खुद सब्जी लाते थे और साधारण खाना खाने के साथ-साथ कपड़े भी साधारण पहनते थे। इस प्रकार उनके चरित्र में सादगी और सरलता का समन्वय सन्निहित था।

मोहन बाबू का जीवन-दर्शन :

मैंने मोहन बाबू के जीवन को धीरतापूर्वक और संपूर्णता में देखा है। डॉ. साहब ने भी अपने जीवन को उसकी पूरी जटिलता, समग्रता तथा एकत्व में देखा ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगौर जीवन को ईश्वर की देन मानते थे। मोहन बाबू जीवन को थोड़े भिन्न ढंग से देखते थे। उनके लिये जीवन एक बहुत गंभीर मसला था और उसे पूरी गंभीरता तथा निश्चित प्रयोजनीयता की चेतना रखकर जीना आवश्यक था। यही कारण है कि उन्होंने आरंभ में ही जीवन के अर्थ की खोज में जीवन की दिशा निर्धारित कर ली थी। इसीलिये वह तमाम विकर्षणों, लोभों और संघर्षों के बीच विजयी रहे। यह उनके सारे जीवन के प्रयासों का ही परिणाम था कि वे समाज के अन्य समाजसेवियों तथा चिकित्सकों से अलग दीख पड़े।

जब हम डॉ. साहब के संपूर्ण जीवन पर एक नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि उनके जीवन में दो बातें प्रमुखता से उभर कर आती हैं-एक देश के प्रति उनका प्रेम और दूसरा उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता। उनके कार्यकलापों से एक ऐसा व्यक्तित्व उभरता है जो हमेशा देश व समाज के कल्याण की बात सोचता था। उनकी गतिविधियों में 'कर्त्तव्य' शब्द की ध्वनि बार-बार गूँजती थी। उनके लिये 'कर्त्तव्य' एक नैतिक आदर्श ही नहीं था, बल्कि अपने आदर्शों को व्यक्त करने का माध्यम था। इस आदर्श के केंद्र में हम परिवार, समाज और देश के प्रति कर्त्तव्य की बात पायेंगे जो अनिवार्यत स्वयं के प्रति कर्त्तव्य की भावना का एक रूप है। उनकी कर्त्तव्य भावना के मूल में मानवीय चेतना की पराकाष्ठा निहित थी।

मोहन बाबू के दर्शन का आधार त्याग की ऐसी भावना थी जो क्रियाशीलता से विमुख न हो। उन्होंने ऐसे त्याग का विरोध किया था जिसका आधार निष्क्रियता व अकर्म हो। उनकी दृष्टि में उत्कृष्ट जीवन वही है जिसमें कर्त्तव्यनिष्ठा हो, कर्म की भावना हो। उनके विचार में सच्ची आध्यात्मिकता अपने परिवार, समाज व देश के प्रति कर्त्तव्य का निर्वाह करना रहा। सामाजिक जागरूकता उनके जीवन-दर्शन का अंग थी। उनके

जीवन का प्रमुख सिद्धांत कर्म-अभिमुख त्याग को जीवन में उतारना था। डॉ. साहब 'उपभोग' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में करते थे कि व्यक्ति समाज की भलाई के लिये किस सीमा तक त्याग करने को उद्यत है।

मोहन बाबू एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमें जीवन के विभिन्न श्रेष्ठ, तत्त्वों को संपुजित करने की प्रवृत्ति मिलती है। वह एक ऐसे अच्छे साथी थे जिनके साथ रहकर आप हमेशा ईमानदारी से भरी सहायता और सहयोग प्राप्त कर सकते थे। अत्यंत उदार और क्षमाशील प्रकृति के डॉ. साहब के व्यक्तित्व में विश्वास की ज्योति सदैव उनके हृदय में जलती थी। मेरा मानना है कि वे अजातशत्रु थे, जिसका कोई शत्रु पैदा नहीं हुआ। उनमें क्रोध नहीं था, लोभ नहीं था, अभिमान नहीं था, तब फिर उनका कोई शत्रु क्यों बनता।

जीवनदर्शन का बहुत कुछ कहनेवाले मोहन बाबू ने बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में प्रचलित सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं का खंडन करते हुये समाज को सचेत किया और नई विचारधारा का प्रतिपादन किया। समय की धारा के विपरीत चलना बहुत मुश्किल है, परंतु मोहन बाबू ने यह साहस दिखाया। इसलिये उनके विचार और जीवन दर्शन आज के इस वैज्ञानिक युग में और भी अधिक उपयोगी हैं।

आज मनुष्य जीवन के वास्तविक मूल्यों को भूलने लगा है और भौतिकता के आकर्षण में निरंतर भटकता जा रहा है, अशांति फैल रही है। स्वार्थ में अँधे लोग किसी सीमा तक अपराध करने से हिचकते नहीं हैं, मानव-मानव के बीच दीवारें खड़ी हो रहीं हैं धन और सत्ता की दीवारें, पद और प्रतिष्ठा की दीवारें। मनुष्य और मनुष्य के बीच बन रही खाई और चौड़ी होती जा रही है। ऐसे में मोहन बाबू के सद्विचारों की आवश्यकता है और भटके हुये को सही राह दिखाने के लिये अनंत काल तक यह आवश्यकता बनी रहेगी।

आज से दो-ढाई दशक पूर्व कही गई उनकी बातें कहीं विज्ञान से टकराती नहीं हैं, बल्कि विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती हैं। धर्म के नाम पर उन्होंने कहीं भी अँध-विश्वास, चमत्कार, पाखंड एवं अतिशयोक्तिपूर्ण

बातों का समर्थन नहीं किया, बल्कि जीवनपर्यंत वे इनकी आलोचना करते रहे। धर्म और जाति के नाम पर कही गई विवेकरहित तथा अवैज्ञानिक बातों को आँख मूंदकर मानने की बजाय उन्होंने खोज, परीक्षण एवं परख पर जोर दिया और कहा कि बिना परीक्षा के और बिना परख किये किसी बात को स्वीकार कर लेने से मनुष्य का पतन होता है। हर बात को तर्क और विवेक की कसौटी पर परखकर यदि उचित लगे तो उसे ग्रहण करना चाहिये।

जब हम मोहन बाबू के जीवन-दर्शन की जड़ों को टटोलते हैं, तो उन जड़ों की तलाश इस तत्काल अतीत से हटकर हमें राष्ट्र और समाज के अतीत की ओर ले जाती है जहाँ मुझे बहुत कुछ ग्रहण करने लायक या अनुकरणीय लगता है और समाज व राष्ट्र के प्रति जो कुछ भी समर्पण भाव से उन्होंने किया वे सब मेरे लिये आवश्यक और प्रासंगिक हैं। मैं उनका गुणगान कर सकता हूँ, उनके रास्ते पर चल सकता हूँ। अतीत के मूल्यों-मर्यादाओं को वर्तमान में समेटना समाज व राष्ट्र के लिये निश्चित रूप से उपयोगी होगा। शायद इसीलिये कुछ विद्वान हमें समझाते रहे हैं कि भारतीय इतिहास मूलतः घटनाओं, व्यक्तियों और स्थितियों का नहीं, विचारों, मूल्यों और अवधारणाओं का इतिहास रहा है। अपनी इस अद्वितीय सूझ पर मुझे गर्व होता है।

डॉ. साहब के बारे में मुझे अच्छी बात यह लगी कि उनमें अपने समय की स्थितियों के प्रति जागरूकता और वहाँ से रचनात्मक ऊर्जा पाप्त करने की प्रवृति शुरू से ही रही। जिंदगी की प्रयोगशाला में मोहनबाबू निरंतर प्रयोग करते रहे। सामाजिक कुरीतियों-रूढ़ियों और गलत धारणाओं, मान्याताओं के गर्देगुबार में से वे बराबर सिर उठाते और बँधी हुई लीक से अलग खड़े होने का माद्दा दिखाते रहे। अंधी आस्था या अंध-विश्वास में वे कभी नहीं बहे। हर बात की तह में जाने की उन्होंने कोशिश की। प्रयोगधर्मी प्रवृति को उन्होंने कभी नहीं त्यागा-- न जिंदगी में, न अपने कार्यकलाप और व्यवहार में। वे किसी भी समूह में बैठे हों, अपना स्वभाव नहीं छोड़े और समूहों के आर-पार झाँक जाते थे। वे जहाँ जैसे थे वहाँ वैसे ही बने रहना पसंद करते थे। अपने ट्रैक को छोड़ दूसरों के ट्रैक पर भागने

में उन्हें कभी दिलचस्पी नहीं रही। सरल और सहज तो वे थे ही, मगर कोई इसे उनकी कमजोरी समझ यों ही चलता कर जाये, यह मुमकिन नहीं था। बात में से बात निकालने का कौशल उनमें था, जहाँ हल्के-हल्के लतीफे भी जुड़ते जाते थे बात की तह में चूंकि वे सहज ढंग से दाखिल हो जाते थे, इसलिए दूर की कौड़ी लाने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती थी। स्वभाव की यह ऋजुता उनके व्यवहार और आचरण की विशेषता बन गई थी। यही कारण रहा कि सुप्रसिद्ध चिकित्सक होने के साथ ही नेकदिल इंसान के रूप में भी वे जाने जाते थे।

डॉ. साहब का मानना था कि व्यक्ति की चेतना पहले अपने परिवार से निकलकर और राष्ट्रीय एवं सामाजिक-राजनीतिक संस्कार तक जाती है। वह वहीं पलता, बढ़ता और समाज व देश की स्वाभाविक सेवा करता है। इसी मानसिकता से डॉ. साहब ने भावनात्मक एकता लाने और सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में अपनी भूमिका निभाई। यही कारण है कि भारतीय मूल्यों के सजग, संवेदनशील और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के मोहन बाबू अनुभव और अनुभूतियों के आधार पर जीवन के जिन विविध पक्षों के साथ उनका साक्षात्कार हुआ, उन्हें वे संवेदना के साथ अपने साथ जोड़ते चले गए।

●●●

खण्ड-पाँच
उपसंहार

प्रेरणा के अजस्र स्त्रोत :

डॉ. साहब के विगत जीवन का लेखा-जोखा जब हम करते हैं तो बही खाते के डेविट तथा क्रेडिट दोनों कॉलमों में से केवल क्रेडिट कॉलम ही भर पाते हैं। डेविट कॉलम को शून्य का ही सहारा लेना पड़ता है। मसलन डेविट तथा क्रेडिट दोनों अलग-अलग खानों में अंकित क्रमशः दर्द और उल्लास में से उल्लास के सामने दर्द कहीं नजर ही नहीं आता। ऐसा था डॉ. साहब का जीवन तथा उनके जीवन की उपलब्धियाँ।

डॉ. साहब के जीवन में हमने तीन बातों को पाया सुरुचि, संस्कृति और शालीनता। सुरुचि इसलिये कि वे आपको उबने न देंगे चाहे जितनी देर आप उनके समीप बैठे रहें। संस्कृति इसलिये कि आतिथ्य सत्कार में कहीं कोई कमी नहीं। उनकी झोली में मौसम के अनुसार आम, अमरूद, केले, अँगूर, सेब, नारंगी तो मिलते ही थे, यहाँ तक कि मीठे-मीठे बेर भी। शालीनता की तो मानों डॉ. साहब प्रतिमूर्ति ही थे। अपने हाथों से सेब-अमरूद काटकर आपकी ओर बढ़ाना तो जैसे उनकी आदत बन चुकी थी। किसी को यह भान नहीं होता था कि वह इतने बड़े तथा आत्मीयता से भरे व्यक्तित्व के समीप बैठा है। अल्पाःहार के बाद लौंग या ईलायंची से आपका स्वागत आपको मिथिला संस्कृति की याद अवश्य दिलाती। आपकी वापसी पर आपके अभिवादन के प्रत्युत्तर से आप कदाचित वंचित नहीं होंगे, बात-व्यवहार में उनकी कुशलता तथा बातचीत के बीच में उनकी वाक्पटुता के कायल हैं हम। इतने धनी व्यक्तित्व में शालीनता इतनी कूट-कूट भरी हो, ऐसा और किसी दूसरे में आज तक मैंने देखा नहीं। ऐसे हस्ताक्षर को मैं बार-बार नमन करता हूँ तथा इनके इन गुणों में से कुछेक भी मैं अपना पाऊँ तो श्रेय उन्हें ही जायेगा और अपने को मैं धन्य समझूँगा।

राष्ट्रमंदिर में अर्चना के पुष्प चढ़ानेवाले तो बहुत हैं, मगर तन, मन, धन से जीवन की सहज प्रवृत्तियों को केंद्रीत कर समाज सेवा को

एकमात्र ध्येय बनाकर जीवन को भेंट चढ़ानेवाले बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ. मोहन सिंह उन बिरलों में से एक हैं जिनका स्थान राष्ट्रमंदिर के उन पुजारियों में है जिन्होंने पूरी जिंदगी समाज की सेवा में अर्पण किया और अपनी एक अमिट छाप छोड़ दी। जीवन संघर्ष के जुझारू योद्धा डॉ. साहब के अनुभव और चिंतन के यथार्थ का विस्तार असीम और अगाध है और यही वजह है कि प्रेरणा के अजस्त्र स्त्रोत का प्रतिरूप बन गए हैं।

डॉ. साहब का बचपन तो रोहतास के गाँव मौडीहां में बीता और प्रवेशिका सन् 1938 में उच्च विद्यालय तिलौथु (रोहतास) से किया, किंतु आई.एससी. सन् 1940 में साइन्स कॉलेज, पटना तथा सन् 1947 में पटना मेडिकल कॉलेज से एम.बी.बी. एस. किया। आजादी के बाद 28 जून, 1948 को पटना मेडिकल कॉलेज के प्रदर्शक पैथोलॉज विभाग के रूप में योगदान करने के बाद 28 सितंबर 1950 को व्याख्याता तथा 9 जून, 1964 को प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष के पद पर प्रोन्नति हुई। इसी बीच सन् 1957 में पटना मेडिकल कॉलेज से डी.सी.पी. तथा सन् 1958 में पटना विश्वविद्यालय से इन्होंने एम.डी. किया। लगभग 31 वर्षों तक चिकित्सा के क्षेत्र में ईमानदारी से अपनी सेवा प्रदान करने के पश्चात् फरवरी 1979 में इन्होंने अवकाश प्राप्त किया।

इस अवधि में ऑल इंडिया पैथोलॉजी एसोसियेशन, आई.एम.ए. (बिहार)तथा पटना मेडिकल कॉलेज एसोसियेशन जैसे सेवा संघों से आपका लगाव रहा। यही नहीं, गाँधीजी के भारत छोड़ों आंदोलन के आह्वान पर आपने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और इन्हें 13 अगस्त, 1942 को फुलवारीशरीफ कैंप में जेल की यात्रा करनी पड़ी जहाँ से 8 अगस्त 1943 को इनकी रिहाई हुई।

आपने अपनी सेवावधि में ही समाज सेवा करने का संकल्प लिया और 20 अक्टूबर 1969 में छात्रों की विकट आवासीय समस्या को देखते हुए पटना के मुसल्लहपुर स्थित बी.पी.ए. होस्टल के जीर्णोद्धार करने के लिए कदम बढ़ाया और बाद में उसका नाम बदलकर सरदार पटेल

छात्रावास कर दिया जिसकी सेवा आजीवन अध्यक्ष के रूप में रहकर उन्होंने की। पटेल सेवा संघ के संपोषक सदस्य के रूप में रहकर लौह पुरुष सरदार पटेल के आदर्शों एवं विचारों को जन-जन तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया। मन, वचन और कर्म से अहर्निश समाज सेवा में तल्लीन डॉ. साहब अनेक स्तरों पर चर्चित और सम्मानित हुए।

नई पीढ़ी के रचनात्मक निर्माण की दिशा में सतत् कर्मशील डॉ. साहब लेखन में भी पीछे नहीं रहे। आखिर तभी तो पटना मेडिकल जरनल तथा इंडियन मेडिकल जरनल में इनके 17 चिकित्सा से संबंधित शोध पत्र प्रकाशित हुए और 'Introduction to General Pathology & Haematology' नामक एक पुस्तक भी उन्होंने लिखी जो मेडिकल छात्रों के बीच काफी सराही गई।

युवाओं की उम्मीदों का केंद्र समझे जानेवाले डॉ. मोहन सिंह अपने अंतिम दम तक भी यह मानते रहे कि समाज के युवाओं में स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा का अभाव है। वे इस बात को लेकर हमेशा चिंतित भी रहते थे कि 54 करोड़ नौजवानों की राष्ट्रीय एकात्मकता की नुमाइंदगी की कोई स्पष्ट पहचान नहीं दिखलाई देती। डॉ. साहब का कहना था कि आज की युवा पीढ़ी के समक्ष यह समस्या खड़ी है कि वे किस विचारध ारा को अपनावें तथा देश के नवनिर्माण में किस प्रकार सहयोग प्रदान करें। बहुत से नेता अपने ही ढंग से निर्माण कार्य को सामने रख रहे हैं। सरकार चलानेवाले नेता अपनी योजनाएँ लाद रहे हैं तथा निरीह समाज को अपनी चिंतनधारा पर चलाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। युवा वर्ग एक ऐसा समाज है जो भावावेश में आकर अनेक कार्य कर बैठता है और अपना तथा समाज का अहित कर बैठता है। ऐसी परिस्थिति में डॉ. साहब इस बात पर सदैव चिंतित रहते थे कि युवा पीढ़ी कैसे अच्छा और बुरा समझने की क्षमता उत्पन्न करे और अपने विवेक व बुद्धि से ऐसे कार्य करे जो देश के लिए कल्याणकारी हो। समाज के अंतर्गत जो युवावर्ग हैं उसे चाहिए कि वह केवल अपने लिए न जिए। समाज व राष्ट्र के प्रति भी उसका दायित्व

बनता है। अपनी मातृभूमि के प्रति यदि वे अपना कर्त्तव्य समझें तो अनेक समस्याएँ स्वतः ही हल हो जाएँगी। डॉ. साहब की समझ थी कि राष्ट्र और विद्यार्थी अथवा राष्ट्र और युवा वर्ग का वही संबंध हैं जो पिता-पुत्र अथवा माता-पुत्र का होता है। आज का युवा वर्ग ही आगे चलकर उस देश की बागडोर को अपने कँधों पर संभालेगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान परिस्थितियों में युवा वर्ग के पास ही इतनी शक्ति है कि वह गाँवों में जाकर, वहाँ की समस्याओं को समझे, उसका हल ढूँढ़ें। इससे निश्चय ही ग्रामीण जनता में युवा वर्ग के प्रति आस्थ। बढ़ेगी। वस्तुतः भारत जैसे विकासशील देश में यदि युवाशक्ति हाथ बढ़ाए तो उस देश का स्तर काफी ऊँचा हो सकता है और उसे खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो सकती है।

डॉ. मोहन सिंह श्रेष्ठ इंसान और उच्च कोटि के चिकित्सक थे। सफल प्राध्यापक, कुशल प्रशासक, प्रवीण परीक्षक के रूप में पटना मेडिकल कॉलेज के पैथोलॉजी विभाग में अपना कीर्तिमान स्थापित करने में अप्रत्याशित सफलता हासिल की। इनकी अनुशासनप्रियता ने सहकर्मियों के लौह-जीवन को स्वर्ण में परिणत ही नहीं किया, बल्कि अपूर्व दीप्ति से आलोकित भी किया। आखिर तभी विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत होने पर पैथोलॉजी विभाग के 'सहकर्मियों ने इन्हें विदाई देते हुए कहा था कि डॉ. मोहन सिंह समाज और राष्ट्र के हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा की ज्योति प्रज्ज्वलित करेंगे और राष्ट्रीय चेतना को नई दिशा देने में सक्षम सिद्ध होंगे।

जीवन-यात्रा के विविध आयाम :

भारतीय संस्कृति, मानवीय जीवन-मूल्य बहुमुखी प्रतिभा के धनी और राष्ट्रीयता के रंग में डूबे डॉ. मोहन सिंह का समग्र जीवन देशभक्तों, समाज-सेवियों तथा भले इंसानों के लिए प्रेरणादायक ग्रंथ के सदृश्य है। समाज एवं चिकित्सा के प्रति समर्पित डॉ. सिंह का जन्म 18 जनवरी, 1921 को बिहार राज्य के रोहतास जिले के नोखा थानांतर्गत मौडीहां गाँव

में पटेल समाज के श्री देवलाल सिंह के घर, माता श्रीमती पौढारो देवी के उदर से हुआ था। इनकी माता पूजा-पाठ में तन्मय रहती थीं और घर का अधिकांश धन आगंतुकों के आदर-सत्कार पर खर्च कर दिया करती थीं। फलतः बालक मोहन सिंह अपनी माता से संस्कारस्वरूप आतिथ्य-भाव और उदात्त जीवन-मूल्यों में आस्था लेकर बड़े हुए और एक निर्भीक तथा साहसी सैनिक की भाँति वह अपने गंतव्य की ओर अग्रसर होते रहे।

रोहतास के तिलौथु उच्च विद्यालय से सन् 1938 में प्रवेशिका परीक्षा उतीर्ण कर पटना साइन्स कॉलेज से सन् 1940 में आई. एससी. पास किया। फिर पटना मेडिकल कॉलेज से 1947 में एम.बी.बी.एस. करने के पश्चात् 28 जून, 1948 को पटना मेडिकल कॉलेज के पैथोलॉजी विभाग में ही प्रदर्शक पद पर अपनी सेवा शुरू की। पुनः 26 सितंबर 1950 को व्याख्याता तथा 9 जून 1964 को प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष बने। इसके पूर्व सन् 1957 में ही इन्होंने पटना मेडिकल कॉलेज से ही डी.सी.पी. तथा सन् 1958 में इसी कॉलेज से इन्होंने एम.डी.की डीग्री हासिल की।

निष्कर्षतः यह कहना अधिक युक्ति संगत होगा कि डॉ. मोहन सिंह का संपूर्ण जीवन एक कर्मठ व्यक्ति, अनवरत साधक, गंतव्य की ओर उन्मुख पथिक और एक निष्ठावन पैथोलॉजिस्ट का जीवन रहा है। पैथोलॉजी उनके लिए एक साधना की भूमि रही, महज उद्येश्यों की पूर्ति को साधन, वैयक्तिक महात्वाकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम नहीं। वह मानवतावादी चिंतक, सामाजिक मनोवृति के निस्पृह साधक रहे। समाज सेवा व चिकित्सा के माध्यम से भारतीयता, देशानुराग और उदात्त मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति उनकी साधना का मूल स्वर रहा। उनका जीवन एक साफ, स्वच्छ और समतल स्लेट की भाँति स्पृहनीय रहा।

डॉ. मोहन सिंह का व्यक्तित्व एक आदर्श भारतीय नागरिक के समान था। वह पैंट तथा बुशर्ट पहनते थे। उनकी आँखों पर लगा चश्मा उनके व्यक्तित्व में गंभीरता का समावेश करता था। उनकी वेश-भूषा जितनी साधारण थी, उतना ही सहज एवं गंभीर उनका आंतरिक व्यक्तित्व

था। वह प्रारंभ से ही गाँधी तथा विनोवा के अनुयायी रहे। अतः अहिंसा पर दुख कातरता, परहित चिंतन और सादा जीवन तथा उच्च विचार उनके व्यक्तित्व के मूल तत्व रहे। वैसे भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों में उनकी गहरी आस्था तो रही, परंतु वह न तो परंपरावादी रहे और न ही आडंबरप्रियता के शिकार। सांस्कृतिक मूल्यों को वह व्यवहार एवं आचरण का विषय स्वीकार करते थे, दिखावा अथवा प्रचार का साधन नहीं। वे मानव-मूल्यों के पारखी थे और चाहते थे कि मानव विशिष्ट मानवीय मूल्यों से परिचालित हों। वे मानव में देवत्व का दर्शन करना चाहते थे।

मानव में देवता की प्रतिष्ठा करने की कामना श्रेष्ठ इंसान की पहली कसौटी होती है और डॉ. सिंह इस निकर्ष पर खरे उतरे। उनके कार्यकलाप एवं गतिविधियाँ इंसानियत से नीचे गिरनेवाले मानवों को, मानवता का मार्ग दिखाए। यही कारण है कि भारत की भावात्मक एकता, सच्ची राष्ट्रीयता का विकास तथा विघटनकारी प्रवृतियों का दमन करने में डॉ. सिंह के कार्यकलाप उपादेय सिद्ध हुए। निश्चित रूप से उनके कार्य को नवयुवकों को गाँधीजी के आदर्शों एवं सिद्धांतों की ओर आकर्षित करनेवाला मैं मानता हूँ। वैसे सच कहा जाए तो डॉ. साहब प्रत्यक्ष रूप से अनेक महापुरुषों से प्रभावित हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, रामकृष्ण परमहंस, डॉ. राममनोहर लोहिया आदि के प्रति भी वे श्रद्धावान रहे थे, किंतु महात्मा गाँधी के सत्य और अहिंसा का जन-जीवन के व्यापार में समाहित हो जाने का अद्‌भुत चमत्कार वस्तुतः डॉ. साहब को अत्यधिक प्रभावित कर सका, क्योंकि गाँधीजी अपने व्यक्तित्व से राजनीति के संघर्ष कंटक-पुलकित कलेवर को संस्कृति का लिवास पहनाकर भारतीय बना गए हैं। उनका योगदान हम भुला भी दें, किंतु संसार नहीं भुला सकेगा, क्योंकि अणुव्रत मानव-जाति के पास अहिंसा ही एकमात्र जीवन-अवलंब तथा संजीवन है।

डॉ. मोहन सिंह सत्य और अहिंसा को संस्कृति के दो अनिवार्य उपादान मानते थे। अहिंसा मानवीय सत्य का ही सक्रिय गुण है। अहिंसात्मक

होना व्यापक अर्थ में सुसंस्कृत अथवा मानव बनना है। सत्य का दृष्टिकोण सही मान्यताओं का दृष्टिकोण है।

कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व:

ऊँचे कद के गौरवर्ण, स्वस्थ शरीर सारस्वत पुरुष डॉ. मोहन सिंह का यह बाह्य आकार था, जिसके भीतर चारित्र्य और बहुमुखी प्रतिभा का समावेश था। मेडिकल साइंस और समाज सेवा की साधना के पथ पर एकचित्त होकर गतिमान होने के लिए शांत, निर्द्वंद्व पारिवारिक परिवेश अपेक्षित है। डॉ. साहब का पारिवारिक परिवेश उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भागमनी देवी के गार्हस्थ्य-तप से पल्लवित-पुष्पित हुआ। परिवार में एकलौते पुत्र डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह तथा पुत्रवधू डॉ. रेखा सिंह का डॉ. साहब को मनोवृत्तानुसारिणी अपेक्षित सहयोग उपलब्ध न होता, तो उन्हें हम-आप इस रूप में नहीं पाते। मेरी मान्यता है कि यदि व्यक्ति अपनी विशिष्ट पहचान बनाना चाहता है तो उसे अंतर्मुख होकर, बिना किसी पुरस्कार या प्रशंसा की अपेक्षा किए, स्वीकृत कार्य को ईमानदारी और निष्ठा के साथ साधना की दृष्टि से संपन्न करना होगा। तभी वह भीड़ में खो जाने के भय से मुक्त होकर भीड़ का नेतृत्व करने की क्षमता अर्जित कर पाएगा। डॉ. मोहन सिंह जी के कार्यकलाप को सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने जीवन में इसी आदर्श पर चलते रहे। इन पंक्तियों के लेखक ने देखा है कि बिजली-बत्ती के गुल होने पर भी तुरंत लालटेन जलाकर काम में यथावत् तल्लीन हो जाते थे, धन की कमी होने पर भी छात्रावास निर्माण के काम में वे अनवरत लगे रहे, चाहे गर्मी की तपती दोपहरी हो या शीत की हाड़ कँपानेवाली सर्दी, वह अपने कर्म से विरत नहीं होते। पूछने पर कहते थे-'रामकाज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम' डॉ. साहब स्वीकृत कार्य से अर्थलाभ या यशोलाभ होगा या नहीं, इस संबंध में सोचते ही नहीं। यशोलिप्सा या अर्थपिपासा से रहित उनके जीवन का एकमात्र मंत्र था-स्वीकृत कर्म के प्रति सच्चाई, निष्ठा और पूरी ईमानदारी। सच है, कृतश्रम हुए बिना सफलता नहीं मिलती।

शील-सौजन्य की प्रतिमूर्ति अत्यंत कर्त्तव्यनिष्ठ डॉ. साहब ने अपने गहन गंभीर कृतित्व से समाज सेवा का एक मानदंड स्थापित किया। समाज-सेवा की साधना जिस निश्छल, निष्काम और अप्रमत्त भाव से समाज-प्रहरी डॉ. साहब करते रहे, वह श्लाघनीय एवं अभिनंदनीय क़हा जाएगा। उनका जीवन सादगी, सच्चाई, त्याग, सेवा का प्रतिरूप रहा। उदारमना, निस्पृह, अमहत्वाकांक्षी डॉ. मोहन सिंह जी सदैव सबकी सहायता हेतु तत्पर रहते थे। वह अपनी सत्प्रेरणा से मुझे भी मेरे कार्य में निरंतर प्रोत्साहित करते रहे। उनका कालजयी कृतित्व हमेशा हम सबके लिए प्रेरणा-स्त्रोत है और मार्गदर्शन हेतु प्रकाश-स्तंभतुल्य। उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यों द्वारा अपनी विलक्षण मेधा एवं क्षमता का परिचय दिया है। डॉ. साहब अहैतुकी कृपा करनेवाले शुभेच्छु रहे और कृपालु शुभेच्छुओं का संपर्क होना मैं जीवन का चरम सौभाग्य मानता हूँ।

मैं ही नहीं राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त चिकित्सक डॉ. एस.एन आर्य भी अपने को सौभाग्यशाली इसलिए मानते हैं कि इन्होंने अबतक जो कुछ भी उपलब्धि की है उसे प्राप्त करने की प्रेरणा अपने पूज्य गुरु एवं धर्मपिता डॉ. मोहन सिंह रहे हैं। रामकृष्ण मेहता द्वारा संपादित एक पुस्तक-'लव-कुश विभूतियाँ के एक संस्मरण में डॉ. आर्य कहते हैं कि विद्यार्थी जीवन में यदि गुरु डॉ. मोहन सिंह का प्रोत्साहन न मिला होता तो दो विषयों में एम.बी. बी.एस. की परिक्षाओं में 91 प्रतिशत एवं 88 प्रतिशत अंक प्राप्त करके वे पटना विश्वविद्यालय में कीर्तिमान स्थापित न कर पाते। यही नहीं डॉ. साहब की प्रेरणा से ही विदेश में चिकित्सा-शास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद डॉ. आर्य स्वदेश-सेवा के लिए लौट आए।

सर्वधर्म समभाव के पोषक:

डॉ. मोहन सिंह 'सर्वधर्म समभाव' के पोषक थे। धर्म को मनुष्य मात्र के लिए एक मूलभूत आवश्यकता मानते हुए उनका कहना था कि कट्टरता एवं धर्मोन्माद से यदि इसे मुक्त रखा जाए तो यह नीति, नैतिकता, दया, भलाई एवं सामाजिक व आर्थिक न्याय का कभी समाप्त न होनेवाला

झरना है और साथ ही मनुष्य को सभ्य बनाने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम भी। स्वामी विवेकानन्द की तरह डॉ. साहब भी सभी धर्मों को सच मानते थे। स्वतंत्र भारत में पले-बढ़े एक नागरिक के रूप में उन्हें कोई असमंजस, कोई किंकर्त्तव्यविंमूढ़ता नजर नहीं आती थी। उनका कर्त्तव्य, उनका दायित्व और उनका धर्म बिल्कुल स्पष्ट था।

हिंदू समाज में पैदाइश और परवरिश की वजह से उनके दिल-दिमाग में राम और रावण की, धर्म और अधर्म की, पुण्य और पाप की छवियाँ, परिकल्पनाएँ और दिक्षाएँ स्पष्ट रही थीं। उनके मतानुसार आज के हिंदू धर्म की एकमात्र जीवित धारा वह है जो कबीर, नानक, तुलसी और मीरा ने चलाई थी। इस धारा की सबसे बड़ी सीख है-'वैष्णवजन तो तैणें कहिए जे पीर पराई जाणें रे।' लगभग यही सीख इस पंक्ति में है-'परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'

इस धर्मधारा में सबके सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। दुश्मन कोई नहीं है। अगर है तो एक दानवी राजनीतिक सत्ता के, जिनका कोई ईमान नहीं सिवाय छल, फरेब, कपट और पाखंड के, हिंसा और प्रतिहिंसा के। हिंदू धर्म की व्यापक धारा धर्म के उन दस लक्षणों से परिचालित है जो सत्य, अस्तेय, क्षमा, करुणा जैसे शब्दों से व्यक्त होती है। डॉ. मोहन सिंह इन शब्दों में, इनकी व्यावहारिकता में, इनकी अपरिहार्यता में उसी तरह निष्ठा रखते थे, जिस तरह अपने शरीर की चमड़ी के होने, और उस पर होनेवाले प्रहारों से उत्पन्न दर्द में। इस प्रकार उनकी धार्मिक चेतना, उनके संस्कार उनके अतीत हमें सिखाते हैं कि पाप का दंड अवश्य मिलता है। दस मुँह से दस तरह के झूठ-कपट में लिप्त पापियों को दंड अवश्य मिलेगा।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में रहने की वजह से और विज्ञान के जरिए वे यह भी जानते थे कि इस हिंदू धर्म में भाग्यवाद नियतिवाद ही सब कुछ नहीं हैं, बल्कि चार पुरुषार्थ भी हैं और उन्हीं में धर्म एक है और उसी की रक्षा के लिए मुझे कर्म करना है। व्यापक समाज की परिकल्पना से संपृक्त डॉ. साहब एक ऐसे इंसान थे जिनमें हिंदू, मुसलमान, सिख,

ईसाई, पारसी और तमाम दूसरे पंथ एक ही व्यापक धर्म-समाज के अंग हैं। इसलिए वे उन तमाम लोगों का सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यावहारिक बहिष्कार करना चाहते थे जो अधर्म और पाप की प्रेत-लीला के कर्णधार हैं। अपने बौद्धिक एवं सामाजिक रचनात्मक कार्य में धर्म के उन तत्त्वों को बहस के केंद्र में लाना चाहते थे जिनके कारण आदमी बेहतर इंसान, बेहतर नागरिक और बेहतर राम-रहीम-भक्त बनता है। वे राजनीति और राजनीतिक कर्मक्षेत्र को समाज का एकमात्र दावेदार नहीं बनने देना चाहते थे। संस्कृति, साहित्य, धर्म और समाज-सुधार से जुड़े रचनात्मक कार्यों की भूमिका को वे वही महत्व दिलाना चाहते थे जो कम से कम महात्मा गाँधी के जमाने में तो रहा ही है। वे धर्म के उदार, तात्त्विक और नैतिक पक्षों के पक्षधर थे। इसमें एक सजग नागरिक के नाते उनकी निजी और सार्वजनिक भूमिकाएँ स्पष्ट थीं। उनके तीर्थ और मंदिर स्वच्छता, सादगी, सदाचार के प्रेरणा-स्त्रोत थे-गंदगी, वैभव-प्रदर्शन, काले धन और अवैध हथियारों के अड्डे नहीं, दुराचार और कदाचार के मठ नहीं। यही कारण है कि उन्होंने समता, न्याय स्वतंत्रता, विवेक, सहिष्णुता, परस्पर सम्मान जैसे मूल्यों को हर हालत में बचाने का प्रयास किया।

डॉ. साहब की दृष्टि में कुछेक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और अन्य 'सिद्धांत' इस देश में मिथकों की तरह छाए हुए हैं। सिद्धांत का एक अर्थ उसूल या आचरण के आदर्श भी है, लेकिन भारतीय समाज में सिद्धांत और आचरण के बीच विद्यमान खाई एक अलग ही प्रसंग है। सिद्धांत से यहाँ उनका आशय उस वैचारिक-तार्किक ताने-बाने या ढाँचे से था जिसकी मदद से हम किसी घटना, परिस्थिति, प्रवृति या परिदृश्य को समझते-समझाते हैं। दुर्भाग्य से आज भारतीय राजनीति और यहाँ के धर्म में इस सिद्धांत का लोप होता दिखाई दे रहा है। राजकीय सत्ता किसी भी समाज को टूटने, बिखरने, जलने, राख होने से बचा सकती है, किंतु आज ऐसा हो नहीं पा रहा है। अंततः डॉ. मोहन सिंह सरीखे इस देश के वे सामान्य नागरिक ही है, जो खुद को और अपने पड़ोसियों के जान-माल को बचा रहे हैं और जिन्हें राजनीति धर्म या सिद्धांत से अधिक प्यारी है

इंसानियत। इन्हीं के चाहने से देश और समाज बच रहा है और आगे भी बचेगा।

कर्मठ व्यक्तित्व :

डॉ. मोहन सिंह के पास लिखने या कहने के लिए समय ही नहीं था। उनकी रुचि सिर्फ कर्म में थी। सरदार पटेल की तरह स्वभाव से व अल्पभाषी थे-कहते कम थे, सुनते अधिक थे। उनके जीवन के विभिन्न पक्षों के बारे में मुझे अधिकांश जानकारी या तो उनके सान्निध्य एवं संपर्क में रहने से मिली अथवा उनके मित्रों एवं सहकर्मियों ने दी।

हम सब इस बात से अवगत हैं कि सरदार पटेल की बैठकों के नोट, पत्र-व्यवहार एवं उनकी गतिविधियों से संबंधित रपट आदि एकत्र करने का काम उनकी पुत्री मणिबेन पटेल ने किया था। मणिबेन पटेल को घटनाओं के विवरण लिखने व सामग्री एकत्र करने में व्यस्त देखकर एक बार सरदार पटेल ने मजाक में कहा था-"यह सब लिखकर समय क्यों व्यर्थ कर रही हो? क्या इससे बेहतर यह नहीं होगा कि हम इतिहास का निर्माण करें?" कौन जानता था कि सरदार पटेल का वह मजाक सच्चमुच एक दिन इतिहास बन जाएगा और वह महापुरुष इतिहास का निर्माण कर देगा वह भी एक ऐसा इतिहास जो मिटाए नहीं मिट सकता और भुलाए नहीं भुल सकता। इस परिप्रेक्ष्य में जब हम डॉ. मोहन सिंह के व्यक्तित्व को परखते हैं तो पाते हैं कि बहुत अधिक न लिखकर उन्होंने इतिहास बनाने का काम किया।

सरदार पटेल की ही तरह डॉ. मोहन सिंह कड़वा सच बोल देते थे, शब्दों को घुमा-फिराकर कहने का उनका स्वभाव नहीं था। वे अपनी भावनाएँ न छिपा सकते थे, न छिपाते थे। उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी उनके शब्दों से कोई आहत भी हो सकता है। पर उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और राष्ट्रभक्ति पर कोई विवाद नहीं था। उनका सामाजिक दृष्टिकोण काफी व्यापक था। उसमें संकुचित जाति व वंश की संकुचित भावनाओं के लिए कोई स्थान न था। चिकित्सक होते हुए भी वे

सार्वजनिक जीवन की एक बड़ी और निरंतर सक्रिय हस्ती भी थे। बहुत हलकों में उनकी मददगार छबि रही है। वे कई बार पात्र-कुपात्र का विचार किए बिना भी सहायता करते थे। निजी जीवन में उन्होंने अपना निजी आचरण दूसरों पर थोपने की कभी कोशिश नहीं की। बल्कि सच तो यह है कि इसका वे यत्न करते थे कि उनके कारण दूसरों को व्यर्थ असुविधा न हो। दूसरों के लिए उनकी मनचाही व्यवस्था करने में मैंने कई अवसर पर पाया वे रूचि से यत्न करते थे।

जैसा कि मैंने पूर्व में कहा है कि डॉ. साहब को अपने कर्म में अटूट आस्था रही। ईमानदारी की कमाई से ही घर में सुख-शांति रह सकती है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। गलत तरीके से अर्जित वैभव और प्रतिष्ठा अस्थायी होती है इसे उन्होंने हमेशा महसूस किया। सच तो यह है कि उससे शारीरिक कष्टों के अलावा मानसिक अशांति अधिक उत्पन्न होती और अचानक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है कि आसमान से गिरनेवाले को सीधे जमीन ही मिलती है। तब घर या बाहर कोई साथ नहीं देता है। डॉ. साहब का यह अनुभव वास्तव में सत्य है कि यदि मनुष्य अपनी मेहनत व ईमानदारी की कमाई पर गुजारा करेगा तो आत्मिक चेतना का निश्चित रूप से विस्तार होगा। इस प्रकार हम पाते हैं कि उनका चिंतन स्वस्थ व उत्कृष्ट था जिसके आधार पर उन्होंने जीवन में आई बड़ी-बड़ी समस्याओं का सामना करने का हर संभव प्रयास किया। साथ ही अपने आपको उन समस्याओं के चक्रव्यूह से सुरक्षित निकल सकने की क्षमता भी विकसित की।

शोषित, पीड़ित समाज के हितकामी:

शोषित, पीड़ित समाज के हितकामी डॉ. मोहन सिंह जी ने आधुनिक जीवन में व्याप्त असमानता, अन्याय, पक्षपात और बाह्याडंबरों पर प्रहार किया। साथ ही उन्होंने अत्याचारों पर जोशीली आवाज से प्रहार कर जनता जनार्दन को उसके विरूद्ध लड़ने और उठ खड़े होने के लिए प्रोत्साहित किया। क्रांति की आग को हर तरफ प्रज्ज्वलित कर दलित व

पीड़ित समाज को नई दिशा प्रदान करना उनका ध्येय था। इनका पूरा जीवन सामाजिक सुधार, देशभक्ति की भावना एवं उत्कृष्ट विचारों से ओत-प्रोत रहा, क्योंकि वे उत्तम समाज की सर्जना में विश्वास करते थे। अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई से वह व्यथित रहते थे। वह कहते थे कि समाज में गहराती विषमता देश के लिए सुखद नहीं है। बचपन को कोई संस्कार देने के पहले उसे रोटी देना देश की खुशनसीबी के लिए परमावश्यक है। स्वस्थ, सुंदर और सुरक्षित राष्ट्र तभी तक रहेगा जबतक देश का बचपन और शोषित, पीड़ित और दलित के बच्चे सुंदर और सुरक्षित होंगे, क्योंकि आस्था के लिए इंसाफ की डगर पर चलना निहायत लाजिमी है।

डॉ. साहब बराबर कहा करते थे कि व्यष्टि की पीड़ा से समष्टि की पीड़ा अधिक महत्वपूर्ण है। उनका हृदय भावनाओं का गहरा सागर था जिसमें चिंतन की अनेक सरिताएँ अनवरत समाहित होती रहती थीं। छूआछूत को समाज का कलंक और ऊँच-नीच के भेदभाव को निंदनीय मानते थे।

आज चारों ओर रावण ही नजर आता है। राम मंदिरों में और अल्ला मस्जिदों में कैद कर दिए गए हैं। कहने को तो सभी मनुष्य हैं पर उसके कर्मों को देखकर तो पुतले जलाए जाते हैं पर हर बार रावण जी उठता है, नए-नए रूप में। वह अमर हो गया है। इस पर डॉक्टर साहब का व्यंग्य सुनने लायक होता था।

जहाँ तक राज्य सरकार का सवाल है डॉ. साहब की समझ थी कि राज्य सरकारें दलित विरोधी उत्पीड़न के मामलें में खुद को ज्यादा दूर दिखाने की कोशिश करती है और सरकारी आँकड़ों में यह बात जरूर छिपायी जा सकती है, किंतु यथास्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण यह नहीं है कि संविधान या कानून क्या कहता है। महत्वपूर्ण यह होता है कि उसे लागू करनेवाले तंत्र पर किस आर्थिक और सामाजिक आधारवाले समूह का प्रभाव होता है। वही अपने तरीके से हर कानून की व्याख्या करता है और कानून को शिथिल भी करने की ताकत

भी रखता है। आखिर पिछले 56-57 वर्षों से दलित उत्पीड़न की घटनाओं को लेकर पूरी न्यायिक प्रणाली समेत पूरा सरकारी तंत्र पूर्वाग्रह से ग्रस्त क्यों दिख रहा है। मेरा मानना है कि दलितों के खिलाफ उत्पीड़न और अत्याचार के मामले में तंत्र का यही हिस्सा ही विफल नहीं हुआ है। यह तो महज न्याय प्रक्रिया से तंत्र का उदाहरण है।

जहाँ तक बिहार में दलितों पर बढ़ती आपराधिक घटनाओं का सवाल है, इसके पीछे यहाँ के समाजमें बढ़ती विषमता भी एक वजह है। यहाँ की एक बड़ी आबादी जिसमें दलित वर्ग भी शामिल है, जो शिक्षित है उसको सरकार की आर्थिक नीतियों ने सड़क पर ला खड़ा किया है। जो छात्र प्रतियोगिता परीक्षा में पास कर जाते हैं, वो तो बिहार से बाहर चले जाते हैं लेकिन जो बच जाता है वह हताशा में न केवल नाजायज तरीके से पैसा कमाने से भी नहीं हिचकता है, बल्कि उनमें हिंसक प्रवृतियाँ पनप जाती हैं और चोरी, डकैती, रंगदारी आदि की ओर भी अग्रसर हो जाता है। दो-चार घटनाओं को अंजाम देकर सर्वप्रथम अपनी पहचान बनाता है फिर आम तौर पर हर अपराधी को जातिगत आधार पर राजनीतिक संरक्षण मिलता है, इसलिए वह भी अपनी जाति और वर्ग के हिसाब से खेमा चुन लेता है।

दरअसल बिहार में जो समस्याएँ एक बारगी दिखाई दे रहीं हैं वास्तविकता में उसकी जड़ें रहीं और हैं। बिहार में अपराध नियंत्रण के लिए व्यक्तिगत स्तर पर कार्रवाई करने की बजाए सामूहिक स्तर पर कार्रवाई करने की जरूरत है। डॉ. मोहन सिंह इस दिशा में सामूहिक स्तर पर कार्रवाई करने की वकालत करते रहे और यहाँ विकास न होने का कारण अराजकता का माहौल मानते थे। डॉ.साहब का मानना था कि सामाजिक चेतना को जागृत करने के पश्चात ही पारिवारिक एवं सामाजिक एकीकरण में सुधार लाया जा सकता है और विकास के पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है।

धर्म का झंडा उठानेवाले लोग नहीं चाहते कि समाज का दबा-कुचला

वर्ग सम्मान का जीवन जीए, इसलिए इन लोगों ने धर्म की आड़ में राजनीतिक षड्यंत्र शुरू किया है। ये धर्म और परंपरा के नाम पर क्रूर व्यवस्था की हिमायत करते हैं। जिसने सदियों तक बहुसंख्यक समाज को इंसान ही नहीं समझा, वह उसे बराबरी का हक दिलाने के लिए कैसे आगे आ पाएगा। डॉ. मोहन सिंह समाज के बहुसंख्यक लोगों को सम्मान दिलाने की बात करते थे जिसके वे हकदार हैं। आखिर तभी तो उन्होंने बातचीत के क्रम उन्होंने कहा था-"सामाजिक अधिकारों का दमन करनेवाली वर्ण व्यवस्था क्या सामाजिक क्रांति के लिए हमें नहीं ललकार रही है? हमारी अति धर्मनिरपेक्षता ने भी आदमी को आदमी से अलग करने का काम किया है। भारत के सामने 21 वीं सदी की सबसे बड़ी समस्या सभ्य समाज का निर्माण है, जिसमें हर पढ़ा-लिखा आदमी गरीबी के खिलाफ लड़ाई लड़े, निरक्षरता को दूर करने का प्रयास करे।" दलित मानसिकता का शोषण प्रबुद्धजनों को शोभा नहीं देता। तस्वीर का रूख बदल देने से तस्वीर नहीं बदलती। स्वस्थ समाज की स्थापना के लिये स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। बुद्धिजीवी शुतुरमुर्ग की तरह आँख मूँदे हुये हैं। मध्यवर्ग का ही तो युवक था-चंद्रशेखर, जो यह महसूस कर रहा था कि हमारे सपनों का मर जाना सबसे खतरनाक होता है। क्या वह जिस सपने के लिये शहीद हुआ दलित चिंतक उससे पूरी तरह सहमत हैं? भगत सिंह ने कहा था-"शोषण और असमानता के उन्मूलन के सिद्धांत पर गठित समाजवादी समाज और समाजवादी राजसत्ता ही सही अर्थों में राष्ट्र का चौमुखी विकास कर सकेगी।" मगर वर्तमान भारतीय राजनीति सामंतवाद का नया संस्करण ही तो है। वह एकमात्र अनुकरण भर कर रही है सत्ता शीर्ष पर बैठे उन आकाओं का जो अपने हितों का स्थायित्व चाहते हैं। ये आका इन शोषित, पीड़ित, दलित लोगों को कठपुतलियों की तरह जैसे चाहे वैसे नचाते हैं अपने इशारे पर। अपने हितों के लिये वे कुछ भी करवा सकते हैं।

दु:ख के साथ ही आश्चर्य तो इस बात की होता है कि सदियों से प्रताड़ित लोग चिल्ला रहे हैं, रिरिया रहे हैं, लेकिन कोई जोखिम भरा काम आज तक उन्होंने नहीं किया, न उम्मीद है। कहीं क्रांति की उम्मीद नहीं,

क्योंकि संकीर्णता की ओट से कुर्सी का आखेट करना यथास्थितिवादियों का सर्वसुलभ रास्ता है। बदलाव चाहने वाले का तो इस देश में वही हश्र होगा जो निराला और मुक्तिबोध का हुआ। रामचरित मानस की इन पंक्तियों से स्पष्ट झलक मिलती है कि सत्ता हथियाने के लिये अपने विरोधी विचारधारा को कैसे छला जाता है, जैसा कि अगस्त ने अपने शिष्य विंध्याचल से किया–

'कुसमय जानि स्नेह संहारा
बढ़त बिंध जिमि घटज निबारा

भारतीय राजनीति ने बांझ बुद्धिजीवियों को सदैव संरक्षण दिया है। दलितों के साथ गैर बराबरी का सुलूक भी किया जा रहा है और स्वयं को श्रेष्ठ भी सिद्ध किया जा रहा है। अगर हमारी संपूर्ण परंपरा गौरवशाली है तो फिर गैरबराबरी या भेदभाव कहाँ से आया? दो विरोधी बातों को किसने ढोया है? दलित और स्त्रियों की विशाल संख्या आज भी गुलाम क्यों है? क्या दलितोत्थान महज एक नारा बनकर नहीं रह गया है, जिसके पक्ष में बोलना कोई गुनाह करने के समान माना जाने लगा है? आज कोई राजनीतिक दल सांप्रदायिकता का ढोल पीटता है, तो कोई जातिवाद का, लेकिन कोई स्नेह और सौहार्द का सवाल क्यों नहीं उठाता है? अपनी पहचान के लिये कुटिल या अव्यावहारिकता का ही प्रयोग क्यों करता है? दरअलसल वर्ण व्यवस्था सीढ़ीनुमा है, एक जाति दूसरी जाति से बड़ी है, दूसरी से तीसरी जाति बड़ी है। इसी प्रकार एक जाति से दूसरी जाति के लोग नीचे हैं, दूसरी से तीसरी जाति के। यहाँ प्रत्येक जाति का 'बड़प्पन' इस बात से निश्चित होता है कि उससे नीचे कौन-कौन जाति है। यह भावना सवर्णों, पिछड़ी जातियों तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों में समान रूप से विद्यमान है। इसी मनोवैज्ञानिक भावना की वजह से आज वर्ण-व्यवस्था समाप्त नहीं हो पा रही है। कोई अपने बड़प्पन को त्यागना नहीं चाहता। सबको इससे मोह है। स्थिति आज भी बदली नहीं है।

गहरी मानवीय संवेदना या तलस्पर्शी मानव-मूल्यों की पहचान

करनेवाले समाजसेवी डॉ. मोहन सिंह ने आसपास घटित होती घटनाओं का नोटिस लिया था और समाज की दुनिया का अनुसंधान करते रहे। उन्होंने समाज के इतिहास को अपने भीतर गुजरते हुये देखा और अपने आप से बाहर निकलकर दूसरों में भी उनका साक्षात्कार करने का प्रयास किया। जीवंत अनुभव सदैव अपने आपका अतिक्रमण करता है, उसकी कोपलें दीवारें लाँघकर बाहर आती हैं। डॉ. साहब ने व्यक्तिगत में सार्वजनिक और सार्वजनिक में व्यक्तिगत की तलाश की। उनके जीवन की सार्थकता इसी में थी। आखिर तभी तो कहा गया है-

'रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखौ गोय,
सुन इठलेयहिं लोग सब, बाँट न लहियै कोय।

डॉ. मोहन सिंह ने समाज में व्याप्त जातिवादी सामंतवादी व्यवस्था का हमेशा विरोध किया और दलितों के अधिकार के लिये संघर्ष की बात कही। इस संदर्भ में उन्होंने दयाभाव के ढोंग पर प्रहार किया, क्योंकि इसी दयाभाव के ढोंग ने ही तो देश में करोड़ों भिखारी पैदा कर दिये हैं। एक वर्ग दया करेगा, दूसरा वर्ग लाचारी में दया लेगा। दोनों वर्गों की इसी मानसिकता को समाप्त करने की बात पर उन्होंने बल दिया।

भारतीय समाज का पूर्णरूप से जनतांत्रिकीकरण नहीं हो सका। शायद यही कारण है कि अभी भी सामंती कुसंस्कार विपरीत परिस्थितियों में भी जैसे-जैसे जीवित हैं, बुद्धिजीवी वर्ग का एक हिस्सा अपने जी तोड़ प्रयासों से वर्ण व्यवस्था को स्थापित करने में लगा हुआ है और क्योंकि बुर्जुआ वर्ग को इससे प्रत्यक्षतः लाभ है इसीलिये संचार माध्यमों में भी वर्ण-अवधारणा को अच्छी-खासी जगह दी जा रही है।

मगर इन सबों के बाद भी मुझे ऐसा लगता है कि अब उन सारी सामंतवादी व्यवस्थाओं में बदलाव अवश्यंभावी है क्योंकि लोकतंत्र का जमाना है। उन सारे आँधी-तूफान के बाद महापुरुषों ने जो कुछ श्रेष्ठ और महान बनाकर रखा है वही अगले समाज को बनाने का आधार बनेगा। किसी भी चीज का सिर्फ काला पक्ष ही नहीं होता, उजला भी होता है।

इसलिये क्यों नहीं सामंती व्यवस्था की अमानवीयताओं से छानकर निकाले गये त्याग, बलिदान, सेवा समर्पण आदि महान मूल्यों को भारतीय संस्कृति की शाश्वत उपलब्धियों के रूप में देखा जाये और आज की स्थितियों के हिसाब से अपने मूल्य विकसित किये जायें।

यह बात ठीक है कि मैं अतीत को अपना वर्तमान नहीं बना सकता हूँ और न वे बीते हुये नायक के जैसा आदर्श पुरुष हो सकता हूँ, मगर सब मिलाकर भारतीय संस्कृति और मोहन बाबू जैसे उसके पोषक में ऐसा जरूर कुछ-न-कुछ रहा है, जो आज मेरे लिये दिशा-दर्शक का काम कर सकता है और वे प्रासंगिक एवं ग्रहण करने लायक हो, जिसे अपनाकर मैं आज के जीवन और समाज की आधारशिला रख सकूँ। कारण कि सेवा, त्याग,समर्पण और बलिदान ही वे उच्चतम सांस्कृतिक मूल्य हैं जो नये और शांतिपूर्ण समाज के निर्माण में सहायक होंगे।

हमें स्मरण हो रहा है पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि के काव्य संग्रह 'भूदान दशक' की ये पंक्तियाँ जिसमें कवि ने शोषण और अन्याय के प्रति अपना तीव्र आक्रोश एवं कर्मशीलता प्रदर्शित किया है-

'मुझे है मिटानी असमता व शोषण,
मुझे आस इस दिन सबेरे मिटेंगे'
मुझे पार करनी बड़ी दूर मंजिल,
कदम बढ़ रहे हैं, न पीछे हटेंगे।'

डॉ. मोहन सिंह सदैव मानवता के होते जा रहे पतन के बीच मानव की तलाश करते रहे। वह समाज में निरंतर संवेदनाशून्य होते जा रहे लोगों के बीच मनुष्यता और मनुष्यता की पहचान के लिए आकुल-व्याकुल रहे। उन्होंने अपनी हड्डियाँ तोड़-तोड़कर, रक्त में घोल-घोलकर समाज के प्रभुओं को चढ़ा दीं, पर जिसकी हड्डियों को समाज के धनी-मानी हस्तियाँ चूसते गए, चटकारते गए। क्योंकि सामाजिक जीवन की स्वार्थपरता, आपाधापी, अंधी दौड़ और आत्मकेंद्रिकता ने उन्हें अंधा बना दिया। सबको जल्दी है। जीवन की इस घुड़दौड़ में किसे फुर्सत है यह देखने की कि

समाज के हाशिए पर पड़ा कौन पिस गया, कौन मर गया?

इस प्रकार डॉ. मोहन सिंह ने अपने कर्ममय जीवन में क्या शिक्षण, क्या चिकित्सा, क्या संस्था, सभी क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट और उल्लेखनीय प्रतिभा का परिचय दिया। यही वजह है कि निरंतर संघर्षों से जूझते हुए उन्होंने जिस भाव धारा और उज्ज्वल आलोक का पक्ष ग्रहण किया उसी का नतीजा उनके जीवन का यह रूप देखने में आया। अपने संघर्षमय जीवन को प्रारंभ करके वे जिस गरिमामय स्थान तक पहुँच पाए, उससे पीछे भी उनकी सतत संघर्षमयी साधना ही प्रमुख रही। जिन संस्कारों को उन्होंने जीवन भर आत्मसात किया था, कालांतर में वे ही डॉ. साहब की जीवन-यात्रा का सफल पाथेय बने। आज के आदमी ने तथाकथित "प्रगति" के पीछे भागमभाग में अपनी जो गति कर ली है, वही डॉ. साहब की चिंता का विषय था। वह निर्धनता, अभाव, यंत्रणा, अत्याचार के दंशों से ग्रसित समाज के विभिन्न जहरीले अंगों की एक ओर शिनाख्त करते रहे, तो दूसरी ओर छल-छद्मों को उघाड़ते भी रहे। पैथोलॉजिस्ट को समाजशास्त्री के रूप में बार-बार सामाजिक विसंगतियाँ विचलित करती रहीं, तो चिकित्सक के रूप में उसकी संवेदना। उनका सूक्ष्म संवेदनशील मन द्वारा जाग्रत जीवन की विभिन्नताओं, विषमताओं और कुंठाओं को उनके समग्र रूप में देखा गया, अनुभव किया गया।

समता साधना का प्राण है, जीवन की ज्योति है। जिस जीवन में समता नहीं है, समभाव नहीं है, उसमें साधना की ज्योति प्रकाशमान नहीं हो सकती। समभाव की साधना के बिना साधक अपने साध्य को सिद्ध नहीं कर सकता। साध्य सिद्धि के लिए सबसे पहली शर्त है कि साधक अपने मन पर जमी हुई विषमता की कालिख को धो डाले। अपने और पराए के भेद की दीवार को गिरा दे। सम्मान और अपमान में सदा एक रूप बना रहे।

डॉ. मोहन सिंह सिंह एक साधक थे। समता उनके जीवन का मूल-मंत्र था। उनके जीवन में अपने-पराए का भेदभाव नहीं था। हरिजन-परिजन का उनके मन में कोई झगड़ा नहीं था। विषमता की चिनकारी उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं करती थी। अपने कार्यकलापों को मूर्त रूप देने की

अवधि में उनपर गालियों एवं अपशब्दों की बौछारें होती रहीं और यह मस्त साधक शांत-भाव से अपने पथ पर बढ़ता ही रहा। मुझे अच्छी तरह याद है सरदार पटेल छात्रावास के भवन-निर्माण हेतु जब डॉ. साहब सहयोग राशि के लिए लोगों के पास जाते थे, तो कभी-कभी उन्हें यह भी सुनने को मिलता था कि "डॉ. साहब की प्रैक्टिस नहीं चल पा रही है, इसी की क्षतिपूर्ति के लिए चंदा तसीलते चल रहे हैं।" डॉ. साहब कई बार इस वाक्य को हमसबों के सामने हँसकर कहते थे जैसे कि इसका उनके मन पर कोई प्रभाव न पड़ता हो, क्योंकि आलोचनाओं और अपमानों के कड़वे घूँट पीने में उनको सम्मान की सुधा से भी अधिक आनंद आता था। उनका यह वज्र आघोष रहा कि क्रांति पथ के पथिक को सम्मान नहीं, सदा अपमान ही मिला है और मान-अपमान से ऊपर उठकर सोचनेवाला साधक ही अपने साध्य को सिद्ध कर सकता है। उनके जीवन की संपूर्ण गतिविधि नियमित थी। उन्होंने समाज के सभी वर्गों के प्रति अपनी उदारता का परिचय दिया। वे अनगिनत युवकों की प्रेरणा और आदर्श के स्रोत बने रहे। उनके जीवन में आचार-विचार-शिष्टाचार की दृष्टि से कभी परिवर्तन नहीं आया।

डॉ. साहब की स्मरण-शक्ति इतनी पारदर्शक और पारखी थी कि उनसे सटीक उत्तर प्राप्त करना विलक्षण चमत्कार प्रदान करता था।

समाज के प्रमुख सदस्यों, कार्यकर्त्ताओं तथा बुद्धिजीवियों का मनोबल बढ़ाने का डॉ. साहब का सतत प्रयास वन्दनीय है। इसी क्रम में उनकी यह अपील बहुत सामयिक है कि गाँव से जिला स्तर तक बंधुओं का संगठन बने जिसमें युवाशक्तियों का सदुपयोग किया जाय तथा उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ा जाय। आज आवश्यकता इस बात की भी है कि समाज के जहाँ प्रबुद्ध और सक्रिय अंगों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़कर स्वस्थ, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मानदंडों के निर्माण में योगदान दें वहीं वर्तमान पीढ़ी की निष्क्रियता एवं शिथिलता में गति प्रदान कर एक स्वस्थ एवं नैतिक वातावरण तैयार किया जाय जिससे सामाजिक न्याय एवं सहयोग के आधार पर एक नये समाज का

निर्माण हो सके जो अब तक विच्छिन्न एवं विभाजित रहा है। इसके लिये समाज के सक्रिय एवं प्रबुद्धजनों को भेदभाव एवं पूर्वाग्रह से उपर उठकर समाज के लोगों को एक साथ खड़ा करने का प्रयास करना होगा, उन्हें उनकी अस्मिता से अवगत कराना होगा क्योंकि समाज के अधःपतन तथा लगातार गिरती साख ने हमसबों को यह सोचने को मजबूर कर दिया है कि अगर समय रहते हम नहीं चेते और समय के साथ हम नहीं चले तो हमारी अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी। न तो हम सामाजिक कुरीतियों पर काबू पा सकेंगे और न ही राजनीतिक क्षितिज पर हमारी पहचान बन पाएगी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ हमें अनायास याद आ रही हैं-"हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।"

अतएव समय का तकाजा है कि हम अपने जुझारूपन का परिचय दें तथा अपनी शक्ति को एक खास मोड़ दें, युवाशक्ति को एक खास दिशा दें। जाहिर है इसके लिये समाज के प्रबुद्ध तथा निष्ठावान लोगों को ही आगे आना होगा, अपने सार्वभौमिक भाव को समाज में बिखेरना होगा। राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर सद्‌भाव का वातावरण तैयार करना होगा। डॉ. साहब ने इसी नक्शे कदम पर चलकर दूसरों को चलने की प्रेरणा दी क्योंकि वह जानते थे कि तत्काल इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं। अतएव इस ओर कारगर कदम उठाना ही होगा, इसके लिये कमर कसना ही होगा। समाज को आज की इस नाजुक स्थिति में हर एक को उस कदम को जोशो-खरोश से उठाने की जरूरत है, मात्र नववर्ष की पवित्र कसमें खाने से काम नहीं चलने वाला बल्कि प्रबुद्ध की तरह समाज के आम लोगों को भी अपनी पेटी कस लेनी होगी।

यह प्रश्न इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि मंडल और मंदिर की व्याकुलता ने आज भारतीय समाज को उत्तप्त कर रखा है जिनमें राजनीतिक तंत्र की अनेक विकृतियों की प्रपंच कथाएँ छिपी हैं। ऐसे कठिन समय में समाज के सभी अंगों को एकजुट करना न केवल हमारा सामाजिक कर्त्तव्य

है, बल्कि दायित्व भी। सामाजिक न्याय की इस दौड़ में हमारी भागीदारी वांछनीय है अन्यथा सत्ता में हिस्सेदारी की हवस सिर्फ हवस बनकर ही हवा में मड़राएगी, धरती पर नहीं। और यह काम तभी संभव है जब हम एक दूसरे पर छिंटाकसी बंद करें, अपनी संगठित एकता का परिचय दें, खोई गरिमा को वापस लाने का प्रयास करें, कदम-से-कदम मिलाएं जिसकी हर तमन्ना लिये तत्पर थे हमारे डॉ. साहब। समाज की अस्मिता को किस तरह बचाया और सुरक्षित रखा जा सकता है इसके संबंध में गंभीर चिंतन और मनन इन्होंने किया था। उनके अनुसार ठोस एवं प्रभावी कदम अब उठना चाहिए।

सादगी और सात्विकता के प्रतीक :

डॉ. मोहन सिंह की विशेषता उनके चरित्र के कारण रही। उस चरित्र के अधिष्ठान हैं सादगी और सात्विकता। वे मूल्य आज आहत हो गये हैं किंतु डॉ. साहब ने बड़ी सहजता से उसे ढोया और निभाया। उनके रहन-सहन, भेष-भूषा, हाव-भाव तथा बात-व्यवहार सबों में सादगी और सात्विकता के स्पष्ट चिन्ह नजर आते रहे। उन्होंने बराबर इस बात का संकेत दिया कि हमारी चादर जितनी बड़ी है, हमें अपने पैर उसी के अनुसार फैलाने चाहिए। गाँधी-विनोवा जैसे महान संतों ने भी इसी बात पर जोर दिया था, किंतु देश के कर्णधारों की आँखों में अपने सपने थे। वे रात भर में देशवासियों की दरिद्रता को दूर कर देना चाहते थे। उसी के अनुसार उन्होंने भीमकाय परियोजनाएं बनाई जिनपर बेहिसाब लाखों-करोड़ों और अब अरबों-खरबों का वारा-न्यारा हुआ। प्रतिफल यह हुआ कि कर्ज चुकाने की बात तो दूर, ऋण का ब्याज चुकाने के लिये अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से ऋण लेने की लाचारी उपस्थित हो गयी और अब तो स्थिति यहाँ तक आ गई कि बाहर से पूंजीनिवेश के लिये देश का दरवाजा पूरी तरह खोल देना पड़ा है। यह तो देश के पैमाने की बात जो समाज पर भी लागू होता है। डॉ. साहब ने भी इसी के मद्दे नजर हुये

न केवल अपने निजी खर्च में कटौती करने की सलाह समाज के लोगों को दी, बल्कि सामाजिक तंत्र तथा उसकी परियोजनाओं पर भी अपने सीमित साधनों के अनुसार खर्च करते रहे और वैसे भी भारी-भरकम परियोजनाओं की कल्पना वे नहीं कर पाते थे। समाज से जो कुछ उन्हें उदारतापूर्वक दान मिल पाता था उसी के अनुसार उनकी आगे की योजना भी बन पाती थी। अनावश्यक खर्चों पर नियंत्रण रखना जैसे उनकी नियति बन गई। आज जरूरत है हमें उनके व्यक्तित्व को पढ़ने की तथा उस व्यक्ति के मस्तिष्क तक पहुँचने की। यदि थोड़ा भी यत्न करें अपने को उनके साँचें में ढालने की, तो बहुत-सारी समस्याओं का निदान हम स्वयं भी निकाल सकते हैं।

जानेवाला चला जाता है और छोड़ जाता है समय की शिला पर एक ऐसी लकीर जिस पर इतिहास हो या साहित्य, समाज हो या संस्कृति, अपने बौने परों से उन लकीरों को बोध कराता है। सहज और सरल व्यक्तित्व की ऐसी रेखाएं हैं, जिनमें वक्रता की कोई गुंजायश नहीं होती। डॉ. साहब के व्यक्तित्व में भी कुछ ऐसी ही रेखाएं प्रतिबिंबित नजर आती थीं।

वैसे भी जीवन का मतलब यह कतई नहीं है कि खा लिया और जी लिये। जब तक दूसरों के लिये कुछ करने का जज़्बा नहीं जगेगा, तबतक जीवन की उपादेयता निस्सार मानी गई है। डॉ. साहब ने भी इसी तथ्य को अपने जीवन में सार्थक किया था। दूसरों के लिये कुछ करने की लालसा बराबर उनके मन में रही और यही लालसा उनके जीवन का आधार तय करती रही। प्रस्तुत ग्रंथ के संस्मरण डॉ. साहब के इसी जीवन की महत्ता पर तो प्रकाश डालते ही हैं आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य को सत्य, अहिंसा, परोपकार, सहनशीलता आदि सद्गुणों से आलोकित स्तम्भ पाठक के मन को दिव्य प्रेरणा और स्फूर्ति से भर सकते हैं। उनके जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग संकलित किए जाने की जरूरत है। इसमें वर्णित सभी प्रसंग अत्यंत प्रेरणादायी होंगे और उनसे हर आयु के व्यक्ति प्रेरणा ग्रहण कर लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि उनका जीवन ही प्रेरणा का अक्षय

स्रोत है। इस संग्रह में हमने डॉ. साहब के जीवन के विविध रूपों का विस्तार किया है जो लोगों को निश्चय ही भाएगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रंथ वरिष्ठ पीढ़ी से लेकर बाद की पीढ़ी तक के समाज सेवियों के जीवन-दर्शन तथा जिन परिस्थितियों में उन्होंने देश की सेवा की उनसे पाठक को अवगत कराता है जो आज की तथा आनेवाली पीढ़ी के लिये अवश्य महत्वपूर्ण है। इन संस्मरणों में समाज का प्रतिबिंब बखूबी झलकता है।

विनम्र एवं सहृदय व्यक्तित्व के धनी :

डॉ. साहब की विनम्रता मैंने किसी अन्य समाजसेवी में नहीं देखी। यही कारण है कि मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। कितनी सरलता और सहृदयता थी उनके अंदर। इसी का प्रतिफल है कि वे हमेशा बौद्धिक हस्तियों से घिरे रहते थे। विद्यालय के प्रोफेसर हों या डॉक्टर, अभियंता हों या अधिवक्ता, किसी विभाग के अधिकारी हों या कर्मचारी अपनी फरियाद लिये बैठे रहते थे उनके समीप।

मुझे आज ऐसा लगता है कि उनकी इस बौद्धिकता के चलते ही राजनीतिज्ञों एवं सत्ताधारियों की तरजीह उन्हें नहीं मिल पाती थी, आज कोई भी सत्ताधारी यह कभी भी बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं कि उसकी मंडली में उससे बड़े बौद्धिक व्यक्तित्व का कोई व्यक्ति रहे जिसका परिणाम है कि आज राजनीति या सत्ता में बुद्धिजीवियों का प्रवेश नहीं के बराबर दीखता है। प्रायः सभी समाज के नेताओं की मानसिकता भी कमोवेश ऐसी ही प्रतीत होती हैं। जहाँ एक ओर वे मरीजों की बीमारी के निदान हेतु खून आदि की जाँच करते थे वहीं दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं के निदान हेतु समाज के दर्द और पीड़ा की भी जाँच करने से बाज नहीं आते थे।

डॉ. साहब की योग्यता, कार्यपटुता, प्रबंध-व्यवस्था, कुशलता,

लोकप्रियता, कर्त्तव्य-परायणता का स्वागत तथा अभिनंदन करता हूँ। इनका व्यक्तित्व काल के भाल पर भोर के तारे के समान चमकता रहेगा तथा उनका कृतित्व इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। डॉ. साहब सागरवत् गंभीर, आकाशवत् विशाल, पृथ्वीवत् पवित्र, सुधावत् सहृदय तथा शिशुवत सरल थे। वे जीवंत, जाज्वल्यमान, खुशहाल तथा खुशमिजाज थे। डॉ. साहब समाज की सेवा जिस एकांत निष्ठा तथा अतुलनीय तत्परता से करते रहे। उसके लिये वे सदैव आदर और श्रद्धा के साथ सबों के दिल में बने रहेंगे।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्रणि नैनं दहति पावकः।
न चैने क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

जैसी गीता की असर पंक्तियाँ मोहन सरीखे विरले लोगों पर ही लागू होती हैं।

तीक्ष्ण याददाश्त :

डॉ. मोहन सिंह जी की तीक्ष्णता और याददाश्त शायद ही कहीं किसी अन्य में देखने को मिले। उनसे बातें करने पर ऐसा लगता था, मानो वे चलते-फिरते संदर्भ-ग्रंथ हों। चालीस-पचास वर्ष पूर्व की बातें भी वे हमेशा हमसबों को सुनाया करते थे चाहे स्वतंत्रता-आंदोलन की बात हो या आधुनिक भारत की घटनाओं की। अपने जीवन में घटित छोटी-से-छोटी घटनाएँ भी उनके दिमाग में तरोताजा थीं जिसे उनके मुख से सुनकर हम पुलकित हो जाते थे। जब कभी उनके खजांची रोड स्थित 'जाँच घर' या कदमकुआँ स्थित निवास पर मैं गया तो बड़े विस्तार से अपने जीवन की कहानियाँ सुनाया करते थे। वे अपने निवास में लगे तरह-तरह के फूलों को दिखाते तथा उनके बीच घूम-घूम कर विभिन्न प्रकार के गुलाब के फूलों का वर्णन किया करते थे। गुलाब के उन फूलों की ओर इशारा करते हैं जो हमें खिलकर, मुस्कराकर जीवन की उमंग देता है, जो जीवन को स्वस्थ और सुगंधमय बनाने के काम आता है तथा अपनी मस्ती और मोहकता से जीवन को सरस बनाता है।

डॉ. साहब आज हमारे बीच नहीं हैं पर प्रत्येक नयन में चिन्मय बने हुए हैं। मैं मुनि मोहन लाल 'आमेट' की इन पंक्तियों से उनकी स्मृति को नमन करता हूँ--

'काया में बँध, बँधे हुए थे, फिर भी तुम थे ज्योतिर्मय,
मिट्टी को तज प्राण! बने तुम नयन-नयन में चिन्मय'।

●●●

जीवन-वृत: एक नजर में

जन्म: 18 जनवरी, 1921
जन्म स्थान: ग्राम-मौडिहाँ, थाना-नोखा, रोहतास (बिहार)
माता: स्व. पौढारो देवी
पिता: स्व. देवलाल सिंह
पत्नी: स्व. भागमनी देवी
भ्राता: वृजनन्दन सिंह, देवकीनन्दन सिंह, बिहारी सिंह,
डॉ. मोहन सिंह तथा डॉ. रामचन्द्र सिंह
पुत्र: डॉ. सत्येन्द्र नारायण सिंह
पुत्रवधू: डॉ. रेखा सिंह
पुत्री: डॉ. सरस्वती सिंहा, डॉ. सुमित्रा सिंह, डॉ. नीलू सिंह
दामाद: डॉ. वसंत कुमार सिंह, डॉ. अनिल कुमार सिंह, डॉ. सुनील कुमार

सन् 1930 के 'सविनय अवज्ञा' तथा 'नमक सत्याग्रह' आंदोलन में हिस्सा लिए।

शिक्षा-दीक्षा: सन् 1938 में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण
सन् 1940 में पटना साइंस कॉलेज से आई. एससी.
नामांकन: दरभंगा मेडिकल स्कूल
सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भाग लिए
11 अगस्त 1942 को गिरफ्तार होकर जेल गए
13 अगस्त 1943 को जेल से रिहा
पुन: नामांकन: दरभंगा मेडिकल स्कूल
सन् 1945 में पटना मेडिकल कॉलेज के संघनित पाठ्यक्रम में नामांकन
सन् 1947 में पटना मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस
सन् 1948 में पटना मेडिकल कॉलेज के पैथोलॉजी विभाग में प्रदर्शक पद पर नियुक्त

सन् 1950 में पटना मेडिकल कॉलेज में व्याख्याता पद पर नियुक्त
सन् 1957 में पटना मेडिकल कॉलेज से डी.सी.पी.
सन् 1958 में पटना मेडिकल कॉलेज से एम.डी.
सन् 1964 में प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सन् 1971 में बैक्टोरियोलॉजिस्ट, बिहार सरकार
सन् 1978 में डीन, चिकित्सा संकाय, पटना विश्वविद्यालय
31 जनवरी 1979 को सेवा निवृत
आपके निर्देशन में 30 छात्रों को एम. डी.
आपके परिवार में 20 डॉक्टर और 2 इंजीनियर

●●●

लेखक-परिचय

संक्षिप्त नाम	- सिद्धेश्वर
पूरा नाम	- सिद्धेश्वर प्रसाद
जन्म-तिथि	- 18 मई, 1941 ई०
जन्म स्थान	- ग्राम+पत्रा-बसनियावाँ जिला-नालंदा (बिहार)
शैक्षणिक योग्यता	- एम०ए०, पटना विश्वविद्यालय, पटना
विशेष योग्यता	- एस०ए०एस०, भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग
सरकारी सेवा	- भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना के कार्यालय में 36 वर्षों तक सेवा।
स्वैच्छिक से० नि०	- वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से सन् 2000 ई. में वृहतर एवं व्यापक हित में स्वेच्छा से सेवा निवृत्त।
प्रकाशित रचनाएँ	- आरक्षण, बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह), बिहार के कुर्मी (निर्देशिका), कल हमारा है, पतझर की सांझ, समता के सपने, आत्ममंथन, सुर नहीं सुरीले, जागरण के स्वर, समकालीन यथार्थ-बोध तथा एक स्वप्न द्रष्टा की अंतर्कथा।
प्रकाश्य रचनाएँ	- युगीन संपादकीय, हम और हमारा समाज, यह सच है, हमें अलविदा ना कहें तथा तीन निबंध संग्रह।
संपादन	- यादें, मयुरा, प्रहरी, संघमित्रा, राष्ट्रीय विचार पत्रिका तथा विचार दृष्टि।
अन्य रचनाएँ	- देश व सजाज के ज्वलंत मुद्दों पर डेढ़ सौ से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारित।
सम्मान	- देश के विभिन्न साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं से अबतक डेढ़ दर्जन से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित।
अभिरुचि	- समाज, साहित्य, पत्रकारिता एवं राजनीति।
संप्रति	- राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली, संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली।
संपर्क	- • 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92 दूरभाष : 011-22530652, 22059410 • 'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001 (बिहार) दूरभाष : 0612-2228519

Himachal Press, Dariapur, Patna-4, Ph.: 3250113, 9234220102, 9835434094